गुरुकुल-पत्रिका

पूर्णाङ्क ६५
जून १९५६

व्यवस्थापक : श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
सम्पादक समिति : श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री शङ्करदेव विद्यालङ्कार
श्री रमेश बेदी (मन्त्री)

इस अङ्क में

अगले अङ्क में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

नाचिकेत उपाख्यान का रहस्य

श्री रामनाथ वेदालंकार

नचिकेता के पिता ने सर्वस्व दान कर दिया। दान की वस्तुओं में बूढ़ी गौओं को देख बालक के अन्तराल में प्रश्न उठा—ऐसे दान से क्या लाभ? भोलेपन में वह पिता से प्रश्न कर उठा—पिता जी, मैं भी तो आप की सम्पत्ति हूँ, मेरा दान किसे करोगे? भोली बालपन की बात सुन पिता चुप रहा। पर बालक के मुख से दुबारा तिबारा फिर वही प्रश्न सुन वह झुंझला उठा—जा, तुझे मैं मृत्यु को देता हूँ। आज्ञापालक बालक मृत्यु के पास जा पहुँचा। तीन रात्रि मृत्यु के द्वार पर वह भूखा बैठा रहा। तब मृत्यु ने कहा – तू मेरा अतिथि है, तीन रात्रि भूखा रहा है, उस के बदले तीन वर माँग ले।

नचिकेता ने कहा—गुरुदेव! यदि आप प्रसन्न हैं तो पहला वर मैं यह माँगता हूँ कि मेरे पिता जो मुझ से रुष्ट हो गये थे पुनः मुझ से प्रसन्न हो जायें, और जब मैं आप के पास से लौट कर जाऊँ तब प्रसन्न हो कर मुझ से वार्तालाप करें। मृत्यु ने कहा—तथास्तु, दूसरा वर माँगो।

नचिकेता बोला—दूसरा वर मैं यह माँगता हूँ कि मुझे स्वर्ग प्राप्त कराने वाली अग्निविद्या (याज्ञिक कर्मकाण्ड) का उपदेश दीजिए। दूसरा वर भी मिल गया। तीसरे की बारी आयी। नचिकेता ने कहा—मृत मनुष्य के विषय में लोगों में बहुत सन्देह फैला हुआ है; कुछ कहते हैं कि मरने के पश्चात् भी आत्मा रहता है; कुछ कहते हैं नहीं रहता। इस में सत्य क्या है? इस का रहस्य मुझे समझाइये। यह विकट प्रश्न सुन मृत्यु कहने लगा—हे नचिकेता, यह वर मुझ से न माँगो। इस के बदले और जो चाहो सो माँग लो। जितनी चाहो धन-दौलत माँग लो, लम्बी आयु माँग लो, हाथी-घोड़े माँग लो, राज्य माँग लो। पर यह पेचीदा प्रश्न मत पूछो। किन्तु नचिकेता न माना। उस ने कहा, जब आप वर देने को कहते हैं तो मुझे तो यही वर चाहिए। तब मृत्यु ने उस की अध्यात्मरुचि की प्रशंसा की और मरणोत्तर मनुष्य की क्या गति है इस का सब रहस्य उसे हृदयंगम करा दिया। उस ने बताया कि मनुष्य के मरने के बाद भी उस का आत्मा अवशिष्ट रहता है जो कर्मानुसार फल पाता है और जो कुछ लोग मुक्ति भी पा लेते हैं। मृत्यु ने उसे योगविद्या सिखाई, आत्मा-परमात्मा के दर्शन कराये और मुक्ति का अधिकारी बना दिया।

मृत्यु कौन?

यह कठ उपनिषद् के नाचिकेत उपाख्यान का सार है। नचिकेता और मृत्यु ये ही इस आख्यान के दो प्रमुख पात्र हैं। नचिकेता तो बालक था वाजश्रवस का पुत्र था। पर यह मृत्यु कौन है? क्या नचिकेता सचमुच मृत्यु के पास गया था? पर यह कैसे सम्भव है कि कोई बालक मृत्यु

(मौत) के पास जाए, उससे वार्तालाप करे, और वर लेकर, यज्ञ विद्या पढ़कर, योग सीख कर वापिस भी आ जाये ? अतः यहां मृत्यु का अर्थ मौत नहीं हो सकता, कुछ और ही होना चाहिए। मृत्यु का अर्थ है 'आचार्य'। अथर्व वेद के ब्रह्मचर्यसूक्त में स्पष्ट ही कहा है—'आचार्यो मृत्युः। अथर्व० ११। ५। १४'—अर्थात् आचार्य मृत्यु है। इस विषय में अथर्व० ६। १३३। ३ भी द्रष्टव्य है—'मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि'—मैं मृत्यु का ब्रह्मचारी हूं'। आचार्य का नाम मृत्यु इस कारण है कि वह अज्ञानी बालक की मार कर ज्ञानी के रूप में नया जन्म देता है, ठीक वैसे ही जैसे कि मृत्यु मनुष्य को मार कर नया जन्म दिया करता है। आचार्य के इस मृत्यु रूप को उपनिषत्कार ने ऐसे सुन्दर रूप चित्रित किया है कि वह साक्षात् मृत्यु ही प्रतीत होने लगता है। इस उपाख्यान में मृत्यु का दूसरा नाम यम आया है। आचार्य यम' भी है क्यों कि वह ब्रह्मचारी को नियन्त्रण में रखता है. उस से ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन कर पाता है।

इस प्रकार कथानक के आलङ्कारिक रूप को हटा दें तो सीधी भाषा में हम यह कह सकते हैं, कि नचिकेता के पिता ने अपनी सब संपत्ति दान कर दी और अपने पुत्र नचिकेता को विद्याध्ययन करने के लिए गुरुकुल में मृत्युरूप आचार्य के पास भेज दिया।

तीन रात्रि भूखा रहा

आचार्य के पास पहुँच कर नचिकेता तीन रात्रि भूखा रहा। यह ठाक ही है, क्यों कि उपनयन से पूर्व बालक को तीन रात्रि का उपवास करना होता है। दिन न कह कर रात्रि इस कारण कहा कि भूख लगने पर बालक दिन में लध्वाहार के रूप में दूध, यवागू (जौ का दलिया) या आमिक्षा (श्री खण्ड) ले सकता है।

तीन रात्रि भूखा रहने का एक और भी रहस्यार्थ है। ब्रह्मचर्य सूक्त में कहा है—

> आचार्य उपनयमानो ब्रह्म-
> चारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
> तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति
> तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥
>
> अथर्व० ११। ५।

अर्थात् 'आचार्य जब ब्रह्मचारी का उपनयन संस्कार करता है तब वह मानो उसे अपने गर्भ में रख लेता है। तीन रात्रि वह उसे अपने उदर में धारण करता है। तीन रात्रियों के पश्चात् जब उस का जन्म होता है तब देवजन उस के दर्शन करने आते हैं।' ब्रह्मचारी की ये तीन रात्रियां कौन सी हैं जिन में वह आचार्य के उदर में रहता है। उदर में रहने का अर्थ है आचार्याधीन गुरुकुल में रहना। अतः गुरुकुलवास-काल के तीन विभाग ही तीन रात्रियां हैं। प्रथम विभाग जिस में वह ज्ञानकाण्ड रूपी प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करता है पहली रात्रि है। द्वितीय विभाग जिस में वह कर्मकाण्ड रूपी माध्यमिक शिक्षा लेता है दूसरी रात्रि है। तृतीय विभाग जिस में वह अध्यात्मकाण्ड रूपी उच्च शिक्षा ग्रहण करता है तीसरी रात्रि है। तीन दिन न कह कर तीन रात्रि कहने में यह स्वारस्य है कि ब्रह्मचारी के अन्दर यह त्रिविध अज्ञान होता है और अज्ञान की उपमा रात्रि से ही दी जाती है। जब प्रथम प्रकार का अज्ञान समाप्त हुआ तब मानो पहली रात्रि व्यतीत हो गई। तीनों प्रकार के अज्ञान से पार हो जाने पर तीनों रात्रियां व्यतीत हो जाती हैं और ब्रह्मचारी के सन्मुख ज्ञान का सूर्य उदित हो जाता है।

तो नचिकेता भी तीन रात्रि मृत्यु के घर पर रहा इस का यह अभिप्राय हुआ कि जब तक

उस के तीनों प्रकार के अज्ञान समाप्त नहीं हो गये तब तक वह आचार्याधीन गुरुकुल में रहा। भूखा रहने का अर्थ है भोगों को न भोगते हुए तपस्यापूर्वक रहना। ब्रह्मचर्याश्रम भोगों का आश्रम नहीं है, वह तो भूखा रहने का कठिन तपस्या का ही आश्रम है।

तीन वर

एक-एक रात्रि भूखा रहने के बदले नचिकेता को एक-एक वर मिलता है। ठीक ही है, वर्तमान शिक्षणालयों में भी तो ऐसा ही होता है। जो प्रथम कुछ वर्षों तक तपस्यापूर्वक विद्याध्ययन करता है उसे प्राथमिक शिक्षा समाप्त कर लेने का प्रमाण पत्र मिल जाता है, यही आजकल का प्रथम वर है। इसी प्रकार माध्यमिक शिक्षा पूर्ण कर लेने पर माध्यमिक शिक्षा समाप्ति का प्रमाण पत्र रूपी द्वितीय और उच्च शिक्षा समाप्ति का प्रमाणपत्र रूपी तृतीय वर प्राप्त हो जाता है।

नचिकेता ने प्रथम वर मांगा पिता की प्रसन्नता का। उपनिषत्कार ने सर्वप्रथम यह वर मंगवा कर बालमनोविज्ञान का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। एक छोटी आयु के बालक से ऐसी ही याचना की आशा की जा सकती है। वह पिता-माता या गुरु का प्रेम, सुन्दर पाठ्य-पुस्तकें आदि—इसी प्रकार की कोई वस्तु मांगेगा। नचिकेता ने भी वही मांगा। उसे स्मरण हो आया गुरुकुल भेजते समय का पिता का रोष और उस ने यह वर माँग लिया कि पिता जी मुझ पर प्रसन्न हो जायें। पर प्रथम वर को इस पिता की प्रसन्नता तक ही सीमित नहीं समझ लेना चाहिये। यह उपलक्षण है उन सब बातों का जिन की पूर्ति शिक्षा के प्रथम काल में होनी आवश्यक होती है। एक प्रकार से यह पूर्वोक्त तीन विभागों ज्ञानकाण्ड का प्रतीक हो सकता है। नचिकेता की पहली रात्रि बीत गई, उस का वर उसे मिल गया। ज्ञानकाण्ड की प्राप्ति के पश्चात् कर्मकाण्ड की शिक्षा की आवश्यकता होती है। दूसरे वर में नचिकेता को आचार्य से विस्तृत कर्मकाण्ड का उपदेश भी मिल गया। अब तो नचिकेता सब वेद-वेदांगों का पण्डित हो गया, अपरा विद्या की विद्वत्ता उसे प्राप्त हो गयी। अब कमी रह गयी परा-विद्या की, अध्यात्मकाण्ड की। उस की दो रात्रियां समाप्त हो चुकी थीं, उन के वर उसे मिल चुके थे। पर अभी तो एक रात्रि और आचार्य के उदर में रहने का अवसर उसे मिला हुआ था। उसे वह हाथ से क्यों जाने देता! तीसरे वर में उस ने अध्यात्मज्ञान भी मांग लिया।

यह वर मत मांग

नचिकेता ने कहा—भगवन्! मरने के बाद मनुष्य का कुछ अवशिष्ट रहता है या नहीं, मेरे इस सन्देह का आप निराकरण कीजिए, यही मेरा तीसरा वर है। देखने में यह प्रश्न बिल्कुल साधारण सा है। पर आचार्य ने इसे साधारण नहीं समझा। वह समझ गया कि इस प्रश्न में नचिकेता की समस्त अध्यात्मजिज्ञासा निहित है। मरने के बाद भी आत्मा रहता है इतना कह देने मात्र से नचिकेता की सन्तुष्टि नहीं होगी। वह तो प्रश्न पर प्रश्न उठाते, कदम पर कदम रखते ईश्वरानुभव तक पहुंचना चाहेगा। पर यह मार्ग तो बड़ा ही जटिल है। जितना यह आकर्षक है उतना ही कठिन भी है। अधिकांश मनुष्य इस पर चलना चाहते हुए भी नहीं चल पाते। प्रारम्भ कर के बीच में ही रुक जाते हैं, और फिर दूसरे मार्ग के राही हो जाते हैं। अतः आचार्य ने शिष्य की परीक्षा करनी चाही। उस के सामने अनेक सांसारिक प्रलोभन रक्खे।

अन्य जो चाहे सो मांग ले, पर यह वर मत मांग। किन्तु शिष्य परीक्षा में खरा उतरा, उस की जिज्ञासा सच्ची निकली। सच्ची जिज्ञासा को देख कर आचार्य से अधिक और किसे प्रसन्नता होगी। आचार्य का रोम-रोम पुलकित हो उठा। उसने कहा—नचिकेता, तू धन्य है। मैं चाहता हूं मुझे, सदा तेरे जैसा ही शिष्य मिले।

नचिकेता को तीसरा वर भी मिल गया। उस ने न केवल यह जान लिया कि आत्मा अमर है, किन्तु आत्मा तथा परमात्मा के दर्शन कर वह भी मुक्त हो गया। तीन रात्रि भूखा रहने की उस की साधना फलीभूत हुई।

—

महात्मा गौतमबुद्धः

श्री धर्मदेवो विद्यामार्तण्डः

(१)

यज्ञेषु हिंसां प्रसमीक्ष्य योऽसौ
दयार्द्रचेता व्यथितो बभूव।
तां वारयामास तथा महात्मा
तं बुद्धदेवं प्रणमामि शुद्धम्॥

(२)

मैत्रीं प्रमोदं करुणामुपेक्षां
य आदिशद् ब्रह्मविहारनाम्ना।
यो ब्रह्मनिष्ठो व्यचरत् पृथिव्यां
तं बुद्धदेवं प्रणमामि शुद्धम्॥

(३)

हिंस्या नहि प्राणभृतः सुरक्ष्या
यतो ह्यहिंसा परमोऽस्ति धर्मः।
इत्यादि तत्त्वानि पुनर्दिशन्तं
तं बुद्धदेवं प्रणमामि शुद्धम्॥

(४)

अनित्यतां लोकसुखस्य पश्यन
यो राजपुत्रोऽपि भवन् मनस्वी।
निर्वाणमाप्तुं यती तपस्वी
तं बुद्धदेवं प्रणमामि शुद्धम्॥

(५)

जनान् दुराचाररतान् विलोक्य
धर्मस्य नाम्नाप्यपथे प्रवृत्तान्।
अष्टाङ्गमार्गं पुनरादिशन्तं
तं बुद्धदेवं प्रणमामि शुद्धम्॥

(६)

य आर्यसत्यान्यदिशन्मुदार्यः
आराधयन् मार्गमृषिप्रदिष्टम्।
सुशान्ति मूर्तिं निरतं च योगे
तं बुद्धदेवं प्रणमामि शुद्धम्॥

(७)

न ब्राह्मणः कोऽपि भवेद्धि जात्या
वर्णव्यवस्था गुणकर्ममूला।
सुस्पष्टयन्तं खलु जातिभेदं
तं बुद्धदेवं प्रणमामि शुद्धम्॥

★

पुराना बन्दरगाह—लोथल

लगभग चार हजार वर्ष पहले वर्तमान अहमदाबाद जिले में धोला तालुके के सरागवाला गांव की जगह पर लोथल नाम का एक बड़ा महत्वपूर्ण बन्दरगाह था। इस बन्दरगाह से यात्रियों और माल की बहुत यातायात होती थी और इस का सम्बन्ध सिन्धु-घाटी के सभी शहरों से था।

भारत सरकार के पुरातत्व विभाग की पश्चिम शाखा ने हाल में वहां की खुदाई की तो वहां सौ से भी अधिक ऐसी मुहरें मिलीं जिन पर तत्कालीन लिपि और पशुओं के चित्र खुदे हुए हैं। ये मुहरें सिन्ध घाटी की तत्कालीन हड़प्पा संस्कृति की याद दिलाती हैं। खुदाई से उस समय के जो चिन्ह और वस्तुएं मिली हैं, उन से पता लगता है कि लोथल एक बड़ा महत्व पूर्ण बन्दरगाह था।

पशुओं के चित्रों की मुहरें

खुदाई करने पर पत्थर और पकी हुई मिट्टी की बनी जो मुहरें मिली हैं, उन में श्रिंग, हाथी, सांड आदि पशुओं और कई तरह के पक्षियों के चित्र खुदे हुए हैं। इन मुहरों पर जो कुछ लिखा हुआ है, उसे देख कर यह भी पता चलता है कि वह लिपि लगभग वैसी ही है जैसी सिन्ध घाटी के लोग लिखते थे।

विशाल भट्ठी मिली

इस प्राचीन बन्दरगाह की जगह की खुदाई करते हुए एक विशाल भट्ठी भी मिली है। इस भट्ठी में ईंटों के आठ ठोस खंड हैं और उन के बीच में थोड़ी-थोड़ी जगह छूटी हुई है, जहां मिट्टी की बनी चीज़ें पकाई जाती थीं। भट्ठी का फर्श ईंटों का है और दीवारों पर गारे का पलस्तर है।

हड़प्पा और मोहंजोदड़ो की खुदाई से यह पता नहीं लग सका था कि उस समय मुद्रांकित वस्तुएं कैसे तैयार की जाती थीं, लेकिन अब इस भट्ठी से वह तरीका समझ में आ गया है।

लोथल में प्राप्त एक मुद्रा

सिन्धु लिपि में अंकित एक मुद्रा

मालूम पड़ता है कि मुहरों की छाप गीली मिट्टी पर ले ली जाती थी और उन्हें भट्ठी में ईंटों की तहों पर रख कर पका लिया जाता था। पकते समय भट्ठी को गारे से लीप कर चारों ओर से पूरी तरह बन्द कर दिया जाता था। धीरे-धीरे मुद्रांकित वस्तुएं पक कर तैयार हो जाती थीं। भट्ठी में मुहरों की छाप वाली मिट्टी कई जगह मिली है।

भट्ठी के एक कोने में पकी हुई मिट्टी की ऐसी १० वस्तुएं मिली हैं जिन पर सिन्ध लिपि और पशुओं के चित्र अंकित हैं। पास ही में राख, जली हुई लकड़ी आदि भी मिली हैं। इतनी बड़ी संख्या में मुद्रांकनों का एक ही जगह पर मिलना इस बात का द्योतक है कि लोथल बड़ा वैभवशाली बन्दरगाह था। मालूम पड़ता है कि व्यापारियों और औद्योगिकों में मुहरों की बहुत मांग थी।

मुहरों और मुद्रांकित वस्तुओं के अलावा पत्थर के बजन, तांबे के आंकड़े, पिनें, चूड़ियां, बर्तन, मनके आदि भी मिले हैं। कहीं-कहीं पत्थर के बने हथियारों के फल भी मिले हैं। मालूम पड़ता है मनके और पत्थर के फल बनाने का काम यहां बड़े पैमाने पर होता था। कई ऐसे बर्तन मिले हैं जिन पर खूबसूरत चित्र बने हुए हैं।

नगर तीन बार बसा

खुदाई से मालूम पड़ता है कि यह नगर तीन बार बसा। पहली बस्ती में चारों ओर दीवारें नहीं थी। दूसरी में चारों ओर किले-बन्दी हो गयी थी और जहां दीवार में टूट-फूट हुई वहां उसे सहारा देने के लिए मिट्टी की ईंटों की दीवार साथ-साथ खड़ी कर दी गयी। आखिरी बार जब-जब यह नगर बसा तो इसके चारों ओर दीवारें नहीं बनायी गयीं।

कुछ जगहों पर मिट्टी की ईंटों के ४५×

४५×१८ के चबूतरे भी मिले हैं। मालूम होता है ये चबूतरे ऊँची सतह पर मकान बनाने के लिए बनाये गये थे। यहां के निवासियों को हमेशा ही बाढ़ का डर रहा होगा, क्योंकि वहां बाढ़ आने का भय हमेशा बना हुआ था। ऐसे इमारती ढांचे भी मिले हैं, जिन की बनावट हड़प्पा में मिले ढांचों से मिलती-जुलती है। लेकिन मालूम पड़ता है कि निकटवर्ती साबरमती और भगवे नदियों की बार-बार आने वाली बाढ़ों ने कुछ प्राचीन इमारती अवशेषों का सफाया कर दिया है।

—

पंचनद-प्रदेशः

श्री इन्द्रो विद्यावाचस्पतिः

१

समाप्लुतः पंचनदाच्छवारिभिः
सुशोभितः पर्वतराजराजिभिः।
प्रपोषितः पुष्कलधान्यभूमिभिः
प्रदेश एष प्रकृते सुखालयः॥

२

इहामरा पाणिनिना कृता कृति–
र्यया निबद्धा नियमेषु भारती।
इहैव सा तक्षशिलाभवत्पुरा
यया प्रदीपो निगमस्य दीपितः॥

३

इहार्यजातिर्हिमवच्छिखाग्रतो-
ऽवतीर्य देशे सरितेव विस्तृता।
इहैव ते योधगणाः पुराभवन्
शकादयो यैर्बहुधा पराजिताः॥

४

यथोपरिष्टात्पतितं शिलालव–
न्नरो निजस्कन्ध पदे बिभर्त्यसौ।
तथोत्तरस्या दिश आगतं सदा
बलं रिपूणामयमग्रहीत्स्वयम्॥

५

बलेन युक्ता, वपुषा समुन्नताः
श्रमक्षमा, साहसमान-शालिनः।
स्थले ऽत्र यत्पंचजना वसन्त्यतो–
मुहुर्विलीनो ऽप्ययमद्य जीवति॥

६

रसस्य लुब्धेन खलेन राहुणा
घृतो ऽस्य दन्ते शकलोऽद्य दृश्यते।
न यात देवा सहसा निराशतां
तमः कदाचित्, तपनस्तु सर्वदा॥

★

इडली और दोशे का इतिहास

ईस्वी सन् ११००-१६००

डॉ पी के. गोडे

भारतीय भोजन द्रव्यों के इतिहास का अभी तक विधिवत् अध्ययन नहीं किया गया। भारतवर्ष के भोजनों में प्रयुक्त पदार्थों में जो विभिन्न भागों में आज भी प्रचलित हैं, कौन से प्राचीन तथा देशी हैं, अभी भी अन्वेषण का विषय है। भारत के औषधिक तथा खाद्योपयोगी पौधों के इतिहास में अपने अध्ययन में मुझे पता लगा कि खाए जाने वाले पौधों में कितने ही १५०० वर्ष पूर्व हमारे देश भारत में विदेश से आयात हुए। भारतीय पाकविज्ञान का इतिहास भी, जो मुख्यतः भोजन द्रव्यों से जुड़ा है, अभी अन्वेषण करना तथा विस्तार-पूर्वक अभिलिखित होना आवश्यक है। इस के लिए हमें कतिपय भोज्य-पदार्थों के, जो अब भी भारत में प्रचलित हैं या प्राचीन व मध्ययुगीन भारत में प्रचलित थे, इतिहास का अध्ययन करना चाहिये। इस सम्बन्ध में हमें भोजन द्रव्यों पर लिखे ग्रन्थों, जैसे अम्बर के राजा सवाई जयसिंह (१६९९-१७४३ ई०) के आश्रित गिरधारी के 'भोजनसार' का, अध्ययन करना चाहिये। हिन्दी दोहों का यह विशालकाय ग्रन्थ कितने ही भोज्य पदार्थों को बताता है जो सवाई जयसिंह की भोजनशाला (१७३६ ई०) में, जब इस ग्रन्थ की रचना हुई, तैयार किये जाते थे। राजस्थान के पाकविज्ञान के इतिहास में यह एक निश्चित युगान्तर चिन्ह है। महाराष्ट्र में संत रामदास के परममित्र रघुनाथ गणेश नवहस्त (ई० सन् १६४०—१७१० के मध्य) ने 'भोजनकुतूहल' नामक एक ग्रन्थ का निर्माण किया। इस के पाठ और इस के लेखक पर मैंने कई निबन्ध प्रकाशित किए हैं। 'भोजनकुतूहल' और 'भोजनसार' दोनों ही १६०० ई० के पाछे के हैं। राजा सोमेश्वर के विश्वकोशीय ग्रन्थ 'मानसोल्लास' (११३० ई०) में भोजन पकाने पर 'अन्नभोग' नामक एक परिच्छेद है। लघु होने पर भी भारतीय पाकशास्त्र के इतिहास में इस का निश्चय ही स्थान है क्योंकि यह चालुक्यों के राजकाल में ११०० ई० के लगभग प्रचलित भोजन पकाने की विधियों का दिग्दर्शन कराता है। भारतीय भोजन द्रव्यों के पूर्व इतिहास के लिए हमें पहले वैद्यक ग्रन्थों जैसे, चरक-संहिता, सुश्रुतसंहिता के अन्नपान (खाने पीने) संबन्धी परिच्छेदों का अध्ययन करना चाहिये। भारतीय भोज्यों के संबन्ध में कितनी ही उपयोगी सामग्री ईस्वी संवत् के आरम्भ से पूर्व लिखे गए बौद्ध धर्मग्रन्थों, जैसे चूलवग्ग, से भी सचय की जा सकती है।

अभी तक मैंने भोजन द्रव्यों पर कुछ लेख, यथा (१) दुग्ध तथा विशेषतया गोदुग्ध[1] (२) वरण (सं० अवरान्न वरान्न) उबले चावल के साथ खाई जाने वाली दालों से तैयार एक भोज्य पदार्थ[2] (३ जलेबी भारत के बहुत से भागों में लोकप्रिय मिठाई[3] और (४) तले चावल (पृथुक)

---

१. सरस्वती महल लाइब्रेरी का जर्नल (तंजौर) खण्ड ४, सं २, पृष्ठ १-७। हिन्दी अनुवाद कल्याण (गोरखपुर) गो अङ्क, १६४५ पृष्ठ ४०५, ६।

२. पूना ओरियन्टलिस्ट, खण्ड १२, सं १-४, पृष्ठ १-६, तथा जैन एण्टीक्वेरी, खण्ड १२, सं २, पृष्ठ ४५-५२।

३. न्यू इण्डियन एण्टीक्वेरी, खण्ड ६, पृष्ठ १६९ १८१।

तले धान्य[1] प्रकाशित किये हैं।

इस लेख में मैं कर्नाटक और दक्षिणी भारत में प्रचलित दो लोकप्रिय भाज्य पदार्थों (१) इडली और (२) दोशे क सबन्ध में सन् ११०० ई० और सन् १६०० ई० के बीच के कुछ सन्दर्भों को बताना चाहता हूँ। इन में शकरा का प्रयोग नहीं होता। ये दक्षिण भारत, महाराष्ट्र और कर्नाटक के होटलों में बिकते हैं, और दक्षिण भारतीय कर्नाटक के लोक जहां भी जा कर रहें, इन्हें अपने घरों में तैयार करते हैं। महाराष्ट्र के लोक भी स्वाद लेकर इन्हें खाते हैं, पर कोई-कोई घर में भी तैयार करते हैं।

(१) इडली और दोशे का सबसे प्राचीन उल्लेख चालुक्य राजा सोमेश्वर के लगभग ११३० ई० में रचित ग्रन्थ 'मानसोल्लास' में मिलता है। इस ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड (गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थमाला बड़ौदा में प्रकाशित, १६३६) में 'अन्नभोग' या राजाओं के खान-पान पर एक परिच्छेद है (पृष्ठ १४५-६)। वास्तव में यह पाकविज्ञान पर छोटी सी पुस्तिका है,जो भारतीय भोजन द्रव्यों के इतिहास के विद्यार्थियों के लाभार्थ अनुवाद सहित स्वतन्त्र रूप से सम्पादित होने योग्य है। इस परिच्छेद में सोमेश्वर कितने ही भोजनों के नाम तथा दक्षिण में कर्नाटकवालों, तामिलों व मराठों में ११०० ई० के लगभग प्रचलित कई कई भोज्यपदार्थों के तैयार करने की विधियां देता है। इस परिच्छेद में निरामिष व सामिष दोनों प्रकार के भोजनों का वर्णन है (देखिए इस के सम्पादक श्री. जी के. श्री गोविन्दकर की भूमिका के पृष्ठ २१-३)। दोशे या घोशक तैयार करने की विधि सोमेश्वर ने इस प्रकार दी है—

पृष्ठ ११८—

> विडलं चाणकस्यैव
> पूर्वसम्भारसंस्कृतम् ।
> तास्यं तैले (ल) विलिप्तायां
> घोशकं त्रिपचेद् बुधः ॥ ६२ ॥
> माषस्य राजमाषस्य वट्टाणस्य च घोशकान् ।
> अनेनैव प्रकारेण विपचेत् पाकतत्त्ववित् ॥६३॥

घोशक चणक (चने के आटे, माष (उड़द, मराठी = उड़ीद) और वट्टन (मटर) से बनाए जाते थे और तेल में पकते थे।

इडली या इडरिका बनाने की विधि इस प्रकार आगे दी गई है—

पृष्ठ ११६-२०—

> आम्लीभूतं माषपिष्टम्
> वटिकासु विनिक्षिपेत् ।
> वस्त्रगर्भभिरन्याभि
> पिधाय परिपाचयेत् ॥ ६६ ॥
> अवतारयात्र मरीचं
> चूर्णितं विकिरेद् अनु ।
> घृताक्ता हिंगुसर्पिमयं
> जीरकेन च धूपयेत् ॥ १०० ॥
> सुशिता धवला
> सलक्षण एता इडरिका वराः ॥

इडरिका या इडली किण्वित (खमीर किए) माश के बारीक आटे से गोले बना कर बनती थी, और फिर मरीच (काली मिर्च) घी, हींग और जीरा मसालों से सुगन्धित की जाती थी।

ईस्वी सन् ११३० के इस संस्कृत ग्रन्थ 'मानसोल्लास' के इडरिका वाले सन्दर्भ से मिलता जुलता 'इडुरिया' का निम्न संदर्भ[2] लक्ष्मणगनी

---

१. एनल्स (भांडारकर प्राच्य अनुसन्धानशाला, पूना), खण्ड २६, पृष्ठ ४३-६३।

२. देखिये, हरगोविन्ददास रचित 'पैसाइंद्रव', कलकत्ता, १६२३-२८, पृष्ठ १६७।

विचरित ११४३ ई० के प्राकृत ग्रन्थ 'सूपासनाहचर्या'[1] से है—

पृष्ठ ४८५—प्राकृत मूल का, जो इडुरिया का वर्णन करता है, संस्कृत रूपांतर यों है—

अस्ति सुराष्ट्रो देशो घोष
इव सुतीर्थकृतशोभः ॥ ३ ॥
तत्रास्ति धनसमृद्धं गिरिनगरं,
नाम पट्टनं तस्मिन् ।
राजा रिपुबलमथनो मथनो.
नाम्ना सुप्रसिद्धः ॥ ४ ॥
तथा च महेश्वरदत्त. श्रेष्ठी,
न्यवसत् प्रचुरधनकलितः ।
ललिता तस्यास्ति प्रिया.
दत्ता नाम्ना तयोः सुतः ॥ ५ ॥
दुर्ललनगोष्ठीक्षिप्तः पितृभ्यां
विचरति प्रतिपुरम् अपि ।
विलसति वेश्यानां गृहे
विविध विलासैर्दुर्ललितः ॥ ६ ॥
पिबति सुरां तथा अरकम्,
सुरतप्रसक्तो गमयति दिवसानि।
अथान्यदा गतः स,
आरामान्यां सपरिवारः ॥ ७ ॥
मधुमंडकमोदकमण्डितानाम्,
इडुरिक गुण्डरवटकानाम् ।
गुरुशकटानि भृत्वा वाटक
करमध्येश च तथैव ॥ ८ ॥
वीणावेणुप्रवीणं सुगायनवृन्दं,
समम् इवानयति ।
ततो गुरुगभीरसरसितल,
दत्तश्वासम् ॥ ६ ॥

सुराष्ट्र देश में गिरिनगर नामक एक समृद्ध नगर था, जहां महेश्वरदत्त नामक एक धनी सेठ रहता था। उनका पुत्र दत्त था जो कितने ही स्थानों में घूमा, वेश्याओं के साथ रहा तथा जिसने सभी प्रकार के आनन्द किए। उसने अपना जीवन सुरा पीने और निर्बाध विश्राम करने में बिताया। एक दिन वह एक झील के किनारे विहार करने गया, और अपने तम्बू वहां गड़वा दिये। आमोद-प्रमोद के लिए वह गाड़ी भरकर मधुमण्डक, मोदक 'इडुरिका' (प्राकृत इडुरिया) गुण्डरवाटक आदि ले गया। मनोरंजन वृद्धि के लिए वह मौखिक और वाद्यसंगीत

---

१. देखिए, हरगोविंददास द्वारा सम्पादित 'सूपासनाहचर्या', बनारस १६१८–६ पृष्ठ ४८५ इस ग्रन्थ के रचनाकाल के लिए एम० विण्टरनित्ज़ द्वारा सम्पादित भारतीय साहित्य का इतिहास (हिस्ट्री ऑव इंडियन लिटरेचर), खण्ड २ पृष्ठ ५'६। इस ग्रन्थ का रचयिता लक्ष्मणगनी था। वह हेमचन्द्र का शिष्य था। उसने गुजरात में अपने ग्रन्थ की 'धन्धुकाय' (आधुनिक धन्धुका) में रचना आरंभ की और गुजरात के राजा कुमारपाल के राज्यकाल में विक्रमी संवत् १९६६ (ईस्वी सन् ११४३) में मण्डलीपुरी (आधुनिक मांडल) में इसे पूरा किया। इस ग्रन्थ में जैन धर्म तथा दर्शन सम्बन्धी कितनी ही कथाएं हैं। 'इडुरिया' का संदर्भ 'दत्तकथा' में मिलता है जो जैनियों के भोगपरिभोग-विरमाण 'व्रत' को स्पष्ट करती है। यह व्रत सांसारिक मनोरंजनों से दूर रहने का विधान करता है। दत्त गिरिनगर के महेश्वर दत्त नामक श्रेष्ठी तथा उसकी पत्नी ललिता का पुत्र था। दत्त सांसारिक मनोरंजनों में आसक्त था और अपने दिन वेश्याओं के साथ विहारों में खान पान में व्यतीत करता था। इन विहारों का आयोजन वह अपने निवास के नगर के निकटस्थ वाटिकाओं में किया करता था।

में प्रवीण गायकों-वादकों को भी साथ ले गया।

उपरोक्त उदाहरण से पता चलता है कि बारहवीं शताब्दि के पूर्वार्द्ध में गुजरात और सुराष्ट्र में भी 'इड्डरिया' (इडली एक सुस्वादु भोज्य पदार्थ के रूप में लोकप्रिय थी।

३. यशवंतराव दाते और मी० जी० कर्वे का मराठी शब्दकोश (खण्ड १, १९३२ पृष्ठ ३१०) 'इडरी-ली' शब्द को कन्नड़ का लिखता है और इसे उड़ीद के खमीरी (किण्वित) आटे और नमक सहित चावल आदि से बने भोज्य पदार्थ से समझाता है। शब्दकोश में लिखित इसका प्रयोग इस प्रकार दिया है—

पृष्ठ ३१०—पूर्णचन्द्राचा अनुकारी,
चौखालयाणेम भजिजे इडरी।

—नारायण व्यास का ऋद्धिपुर वर्णन (८१)-सम्पादक जी० के० देशपाण्डे, १९२९।

उपरोक्त उद्धरण से इडरी रूप और वर्ण में (वृताकार और श्वेत होने से) पूर्ण चन्द्रमा सदृश कही गई है।

४. अपने 'विजयनगर साम्राज्य (ई० स० १३४६-१६४६) में सामाजिक और राजनैतिक जीवन' खण्ड २ मद्रास, १९३४ में डा० बी० ए० सलेटोरे विजयनगर साम्राज्य में प्रचलित कुछ भोज्य पदार्थों[१] के सम्बन्ध में कुछ सूचनाएं निम्न कवियों के काव्यों के उद्धारणों के आधार पर देते हैं।

(१) १४८५ ई०...तेरा कणाबी बोमरस।

(२) १५०८ ई०...मंगरस तृतीय—सूत्रशास्त्र नामक अपने ग्रन्थ में।

(३) १६०० ई०...अरणाजी।

डा० सलेटोरे द्वारा (पृष्ठ ३१३) बोमरस के उद्धरण में हमें 'कडवु' नाम के एक भोज्य पदार्थ का नाम मिलता है भाण्डारकर प्राच्य अनुसन्धानशाला के एक दक्षिण भारतीय शास्त्री जिन्होंने मेरे लिए कन्नड़ पाठको पढ़ा इस 'कड़वु' का मिलान 'इडली' से करते हैं। मुझे यह पहचान मान्य नहीं है क्योंकि आज भी 'कडबु' महाराष्ट्र में तैयार की जाती है, और यह इडली से नितान्त भिन्न है।

मंगसर तृतीय अपने 'सूपशास्त्र में निम्न पदार्थों के तैयार करने की विधि बताते हैं—

(१) घरी बिलंगायि (२) हालगारिगे (३) सुवुडु-रोटी (४) हिमाम्बु-पानक।

वह एक हिन्दु भोजन का विवरण भी देता है—देखिये कविचरित, खण्ड द्वितीय पृष्ठ १८८ कवि अरणाजी उंट और मिठाई अरणाडी का भी वर्णन करता है—देखिए कविचरित, खण्ड २, पृष्ठ ३३७-७।

कन्नड विद्वान इन कवियों के ग्रन्थों को देखें, और बतावें कि क्या उनमें 'इडली' और 'दोशे'

---

१. भारतीय भोजन, द्रव्यों के इतिहास में रुचि रखने वालों के लिए मैं निम्नइतिहास स्रोतों को भी देख रहा हूँ जो डाक्टर बी० ए० सलेटोरे ने अपने 'सामाजिक और राजनैतिक जीवन इत्यादि' खण्ड २, की पाद टिप्पणी १ में दिए हैं—

(अ) वरगुण पण्डया (९ वीं शताब्दी) का अवसमुद्र अभिलेख एपिग्रेफिका इण्डिका, खण्ड ६।

(आ) कवि शांतिनाथ (सन् १०६८ ई०)—देखिये कवि चरित, खण्ड २, पृष्ठ ६।

(इ) 'पार्श्वनाथ पुराण' भी विभिन्न प्रकार के भक्ष्यों का वर्णन करता है, देखिए कवि चरित, खण्ड, १, पृष्ठ ३२७।

(ई) वाटर्स का 'युवान्' चुआन् खण्ड १ पृष्ठ १७८ भारत के भोज्य पदार्थ।

का भी वर्णन है, जो मेरे प्रस्तुत निबन्ध का विषय है।

५. मराठी 'शब्दकोष' (खण्ड १, १९३२) इडली के स्थान पर इडुरी शब्द देता है जैसा कि महाराष्ट्रीय सन्त एकनाथ (सन् १५१३-६६ ई०) की रचना रुक्मिणी स्वयंवर में मिलता है। इसकी रचना शक संवत् १४९३ – ईस्वी सन् १५७१ में हुई[1]। शब्दकोष का इडुरिया वाला उद्धरण इस प्रकार है—

पृष्ठ ३११—

"पूर्णे परिपूर्णे पुरिया ।
सबाह्य गोड गुलवरिया ।
क्षीरसागरीयमचय क्षीरघारिया ।
इड्रिया सकुमारा ॥"
—रुक्मणी स्वयंवर, १४, १६१।

यद्यपि इडली एक कन्नड़ और ठेठ दक्षिण भारतीय भोज्य पदार्थ है, लगता है कि यह १२ वीं शताब्दी में गुजरात में, और १६ वीं शताब्दी में महाराष्ट्र में भी लोकप्रिय था जैसा कि एकनाथ द्वारा अन्य लोक प्रिय पदार्थों जैसे पुरिया, क्षीरघारिया, आदि के साथ इस का नाम लेने से पता चलता है।

६ हो सकता है कि दक्षिण भारत के संस्कृत और देशी भाषाओं के ग्रन्थों में 'इडली' और 'दोशे' के संदर्भ हों। इन ग्रन्थों से अनभिज्ञ होने के कारण इन संदर्भों की खोज मेरे लिए शक्य नहीं। नीचे 'इडली और दोशे के संबन्ध में मैं उद्धरण दे रहा हूँ जो भांडारकर प्राच्य अनुसन्धान शाला में चम्पू साहित्य का विशेष अध्ययन करते,स्नातकोत्तर विद्यार्थी, श्री सी. आर. देशपाण्डे ने मुझे बताए।

रामानुजाचार्य के 'श्री रामानुज चम्पू' की रचना सन् १६०० ई० में हुई। इस का संपादन श्री पी. पी. एस. शास्त्री (मद्रास राज्य प्राच्य माला सं. ६, मद्रास १९४२) द्वारा हुआ है। यह चम्पू प्रसिद्ध द्वैत दार्शनिक श्री रामानुज (१०१७-११३७ ई०) का ऐतिहासिक जीवनवृत है। इस चम्पू के तृतीय स्तवक का १९वां श्लोक इस प्रकार है—

पृष्ठ ३९—

अभयागम्य पदे पदे सविनयं संप्रार्थितो गेहिभिः
शुण्ठीजीरकरामठादिसुरभिगन्धकृता इड्डली ।
दोशामंडलमिन्दुबिम्बधवलं सद्यो घृतेनाप्लुतम्
भक्तं सवर्णसवर्णसूपासहितं सामोदमास्वादयन॥

यह श्लोक अतिथियों के गृहस्वामियों द्वारा किए गए स्वागत का सुन्दर कवित्वपूर्ण वर्णन देता है। अतिथि ने उबले चावलों का निम्न भोज्य पदार्थों सहित, दिए भोज को प्रसन्न हो कर खाया—

१. इड्डली—गोलाकार सूंठ, जीरे, हींग से सुवासित इडली'

२. ताजे घी में डुबाए चन्द्रबिंब गोल आकार के 'दोशे'

७. महाराष्ट्र के संत रामदास के परम मित्र रघुनाथ नवहस्त (नवाये)[2] ने भोजन द्रव्यों पर ई० सन् १६७५-१७०० में मध्य 'भोजन कुतूहल'[3] नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ

१. एकनाथ का काल तथा जीवन श्री एस. चित्राव शास्त्री के मध्ययुगीन चरित कोश, पूना, १९३७, पृष्ठ १७१-४ में अभिलिखित है। 'रुक्मणी स्वयंवर' की तिथि पृष्ठ १७३ पर दी है।

२. इस लेख पर मेरा निबन्ध 'बम्बई विश्वविद्यालय के जर्नल', १९४१ में देखिए।

३. 'भोजनकुतूहल' के हस्तलिपि के लिए देखिए, आफ्रेक्ट, CC I, ४१८, II, ९५, III ९०।

के प्रथम परिच्छेद में वह खाद्यपदार्थों, जिस में शाक, धान्य, फल आदि भी हैं, तथा उन भोज्य पदार्थों की भी, जो महाराष्ट्र तथा भारत के अन्य प्रदेशों में १७ वीं शताब्दी में प्रचलित थे, सूचि देता है। भण्डारकर प्राच्य अनुसन्धान शाला के राजकीय हस्तलेख पुस्तकालय में इस प्रथम परिच्छेद की एक हस्तलिपि है (सं. ५६४-१८६६-१६१५)। इस परिच्छेद की शीर्षकों के आधार पर व्याख्या मैंने एनल्स (भं० प्रा० अ० शा० खण्ड २१ पृष्ठ २५४-२६३) में प्रकाशित की है। इस हस्तलिपि के १६ वें पन्ने पर वह 'घिराठी, पुरिका, गोधूमफेनी' आदि के साथ 'इडली' का उल्लेख भी करता है। यह संदर्भ दिखाता है कि १७ वीं शताब्दि में भी महाराष्ट्र में 'इडली' लोकप्रिय थी।

इस निबन्ध को मैं, विद्वानों से इस प्रार्थना के साथ समाप्त करता हूँ कि वे इन दो लोकप्रिय भोज्य पदार्थों 'इडली और दोसे' के सम्बन्ध में, उन स्रोतों की सूचनाएं भी दें, जो मुझे ज्ञात नहीं हैं।

मंगल सूत्र

○ स्वस्ति की आकांक्षा करने वाले बहुत से देवों ने और मनुष्यों ने तरह-तरह के मंगलों की कल्पना की है। भगवान अब बताइये कि उत्तम मंगल कौनसा है।

(महात्मा बुद्ध ने कहा—)

○ मूर्खों की संगति न करना, पंडितों की संगति करना, और जो पूजनीय हैं उन की पूजा करना यही उत्तम मंगल है।

○ अनुरूप प्रदेश में वास, पूर्व काल से लगाकर किया हुआ पुण्य, आत्मा का सम्यक् प्रणिधान यही उत्तम मंगल है।

○ बहुश्रुतता, कलाकौशल, भलीभांति सीखी हुई नीति या विनय और सुभाषित वाणी, यही उत्तम मंगल है।

○ माता-पिता की शुश्रूषा, पत्नी पुत्र की संभाल और बिना आकुलता के कार्य सम्पन्न करना, यही उत्तम मंगल है।

○ दान और धर्माचरण, नाती-गोतियों की संभाल और ऐसा कर्म जिस के विरुद्ध कोई बोल न सके, यही उत्तम मंगल है।

○ पाप से दूर और विरत रहना, मद्यपान से परहेज करना, धर्म के काम में प्रमाद न करना, यही उत्तम मङ्गल है।

○ दूसरों का सम्मान करना, स्वयं नम्र होना, सन्तुष्टि, कृतज्ञता और समय-समय पर धर्म श्रवण यही उत्तम मङ्गल है।

○ शांति सुवचन, श्रमणों का दर्शन, समय-समय पर धर्म चर्चा, यही उत्तम मङ्गल है।

○ तप, ब्रह्मचर्य, आर्यसत्यों का दर्शन, निर्वाण का साक्षात्कार, यही उत्तम मङ्गल है।

○ यश अपयश आदि लोकधर्म के आघात से जिसका चित्त जरा भी कम्पित नहीं होता, जो अ-शोक, रजरहित और क्षेमयुक्त हो, यही उत्तम मङ्गल है।

इस प्रकार के मङ्गलों का सम्पादन करके, कहीं भी पराजित हुए बिना जो सर्वत्र स्वस्ति पाते हैं वही उन का उत्तम मङ्गल है।

★

बलिदान

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

पिताजी निमोनिया के भयंकर आक्रमण से निकल चुके थे। अभी इलाज जारी था, और निर्बलता बहुत अधिक थी, परन्तु रोग का सिर कट चुका था।

मैं नित्य नियम के अनुसार दोपहर बाद बलिदान भवन गया। अर्जुन कार्यालय जहां मैं सुख की तरह तब भी रहता था, बलिदान भवन से बहुत दूर नहीं था, अधिक से अधिक चार मिनट का पैदल रास्ता होगा। पिताजी की तबियत अच्छी थी। उस समय कुछ अन्य महानुभाव भी वहां बैठे थे। पिताजी को स्वास्थ्य लाभ करते देख कर सभी प्रसन्न थे। पिताजी ने सारी बीमारी का बड़ी धीरता से सामना किया, परन्तु एक बात इस बीमारी में जिह्वा पर रही। वे बार बार कहते थे, कि अब यह शरीर सेवा करने के योग्य नहीं रहा। अब तो एक ही इच्छा है कि अगले जन्म में ऐसा शरीर प्राप्त करूँ जो धर्म की सेवा के काम आ सके। ऐसे ही भाव उस दिन भी पिताजी ने प्रकट किये। इस पर हम सब ने निवेदन किया कि अब तो कोई खतरे की बात नहीं है। डा० अन्सारी ने भी कह दिया है कि रोग जा चुका है, कुछ ही दिनों में आप सर्वथा स्वस्थ हो जायेंगे। पिताजी ने मुस्करा कर जो उत्तर दिया उस का आशय यह था कि होगा तो वही जो भगवान् चाहेंगे, मैं तो केवल अपनी इच्छा प्रकट कर रहा हूँ।

थोड़ी देर तक बातचीत करने के पश्चात् हम लोग उठ गये, क्योंकि पिताजी के नित्य कर्म से निवृत्त होने का समय हो गया था। केवल उन का सेवक धर्मसिंह उन के पास रहता था। उस ने चारपाई के पास कमोड रख दिया, पिताजी स्वयं उठ कर शौचादि से निवृत्त हुए, और फिर चारपाई पर लेट गये। हम लोग बलिदान भवन के दूसरे हिस्से में थोड़ी देर बातचीत कर के अपने-अपने स्थानों को चले गये।

मैं घर आकर चारपाई पर बैठा ही था कि बच्चा भागता हुआ आया और उस ने घबराये हुए स्वर में कहा—दादा जी को किसी ने गोली मार दी। घर के सब लोगों ने अचम्भे और अविश्वास से उस की बात को सुना, क्योंकि मैं उन्हें पिताजी के स्वास्थ्य की सन्तोषजनक उन्नति होने के समाचार सुना रहा था। यह समझ कर कि बच्चे ने बात समझने में भूल की है, मैंने उस से पूछा—तूने यह किस से सुना' उस ने उत्तर दिया—'आप पूछ लीजिये, सड़क पर जीवनलाल जी खड़े हैं, वे कह रहे हैं।'

मैं उस समय तीसरी मंजिल पर था। छज्जे पर खड़े जीवनलाल जी बहुत ही घबराई आवाज में मुझे पुकार रहे थे। मुझे देख कर वे बोले—स्वामी जी को किसी ने गोली मार दी।

मैंने पूछा—गोली मारने वाला पकड़ा गया या नहीं ?

जीवनलाल जी गोली की आवाज सुन कर सड़क पर ऐसी खबर देने के लिये भाग आये थे, उन्होंने उत्तर दिया,

'यह तो पता नहीं, शायद भाग गया हो'।

समाचार सुन कर मेरे पांव तले जमीन निकल गयी, परन्तु समाचार के जानने और समझने में देर न लगी, ऐसी आशंका तो कुछ दिनों से हो ही रही थी। इतने में घर के और लोग छज्जे पर पहुँच गये, और पूछने लगे कि

क्या बात है। परन्तु मैंने कोई उत्तर नहीं दिया—और यह कह कर कि 'मैं स्वयं देख कर आता हूँ, क्या बात है।' नंगे पांव सीढ़ियों से उतर गया। पीछे, पीछे घर के अन्य लोग—मेरी पत्नी; और सभी चल पड़े।

मैं भागता हुआ भवन के नीचे पहुंचा तो देखा कि कुछ आदमी इकट्ठे हो गये हैं, और दो चार ऊपर भी जा चुके हैं। मुझे देख कर सभी तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगे, पर मैं किसी का भी उत्तर दिये बिना ही ऊपर चढ़ गया। वहां जाकर अन्दर घुसते ही मेरी पहली नजर पिता जी की चारपाई पर पड़ी, पिताजी की आंखें बन्द थीं; मानो सुखपूर्वक सोये हों। छाती के सामने भगवे कुर्ते पर रक्त दिखाई दे रहा था, जो असली परिचय की सूचना दे रहा था, अन्यथा पिताजी को देख कर एकदम यह अनुमान नहीं लग सकता था कि वे सजीव नहीं हैं।

दूसरी नजर सेवक धर्मसिंह पर पड़ी। वह कमरे के मध्य में जांघ को हाथ से दबाये पड़ा था। उस के चारों ओर खून फैला हुआ था, मैंने पूछा—'धर्मसिंह तुम्हारे भी गोली लगी है ?'

धर्मसिंह ने उत्तर दिया—'हां, पण्डित जी, मेरे भी गोली लगी है। पर आप मेरी चिन्ता न करो, स्वामी जी को कई गोलियां लगी हैं, उन्हें सम्भालिये।' मैं तब तक पलंग के पास पहुंच चुका था। मैंने पिताजी की कलाई और माथे पर हाथ रखा, तो उसे बिल्कुल ठण्डा पाया। उसी समय मेरी दृष्टि पलंग के पीछे कमरे के कोने में जमीन पर औंधे मुंह लेटे हुए स्नातक धर्मपाल जी पर पड़ी। मैंने पूछा,

'धर्मपाल जी क्या आप के भी गोली लगी है ?'

उन्होंने उत्तर दिया,

'मैंने गोली मारने वाले को दबा रखा है।'

मैंने घबरा कर पूछा,

क्या सहायता के लिए आऊं ?

उन का उत्तर था—

'आप इस की चिन्ता न करें इसे मैं नहीं छोड़ूंगा। आप स्वामी जी को संभालिये।'

उस परिस्थिति में मेरा दिमाग कैसे ठिकाने रहा, मुझे इसी बात पर आश्चर्य है, इस समय बहुत से और महानुभाव भी वहां पहुँच चुके थे। वह भी विचार में भाग ले रहे थे। पहला काम यह किया गया कि डा० अन्सारी को टेलीफोन द्वारा बुलाया गया और दूसरा काम यह हुआ कि कोतवाली में दुर्घटना की सूचना दी गई।

यह प्रबन्ध हो ही रहा था कि कमरे के दरवाजे पर हल्ला मच गया। मैं भाग कर दरवाजे पर गया तो देखता क्या हूँ कि हमारा स्वयंसेवक राजाराम हाथ में लम्बा चाकू लिये अन्दर घुसने की चेष्टा कर रहा है, और उसे डा० धनीराम जी (मेरे बहनोई) दोनों हाथों से पकड़ कर रोक रहे हैं, कुछ लोग कह रहे थे, इसे अन्दर जाने दो, और कुछ लोग उसे शांत कर रहे थे। पूछने पर राजाराम ने कहा—मैं उस पापी को मार कर छोड़ूंगा, मुझे मत रोको, नहीं तो एक की जगह कई खून हो जायेंगे। मैंने जाकर राजाराम का चाकू वाला हाथ पकड़ लिया। वह मुझे देख कर चिल्लाया—पंडित जी, आप भी मुझे रोक रहे हैं। हमारे जीते जी उस ने स्वामी के गोली मार दी—हम उसे अभी मार कर छोड़ेंगे।'

मैंने उसे समझाया कि यदि तुम उसे अभी मार दोगे तो इस का कोई प्रमाण न रहेगा कि वह हत्यारा है, और संसार पर सचाई प्रगट न होगी। यह समय शांत रहने का है, घबराने का नहीं। यह नहीं कि हमारे जोश के कारण पापी का पाप हमारे ही सिर लगा दिया जाय।

राजाराम खूब गठे हुए शरीर का, लम्बा चौड़ा नौजवान था। उस के चेहरे से बहादुरी टपकती थी। वह ट्राम्बे के दफ़्तर में चौकीदारी करता था, परन्तु उस की नौकरी जाति सेवा के काम में कभी बाधक नहीं होती थी, बिल्कुल निर्भय, सुन्दर डीलडौल के उस सच्चे नौजवान को देख कर हृदय में अभिमान पैदा होता था, कभी किसी बड़े से बड़े खतरे के काम की आज्ञा मिलने पर मैंने उसे क्षण भर के लिए भी सोचते या घबराते नहीं देखा, आज्ञा मिलते ही मैदान में कूद पड़ता—यह राजाराम का स्वभाव था। मैंने इस समय राजाराम की आंखों में रक्त बरसता देखा तो अन्य कोई उपाय न पाकर जोर जर से आज्ञा दी—

'राजाराम क्या कर रहे हो, क्या आज्ञा का उलङ्घन करोगे ? चले आओ यहां से।'

राजाराम का हाथ ढीला हो गया, उसने एक बार खून भरी आंखों से उस कोठरी की ओर देखा, जहां धर्मपाल जी के आहिनी शिकंजे में पड़ा हुआ हत्यारा फड़फड़ा रहा था, और जिस वेग से ऊपर चढ़ा था, उसी वेग से धड़धड़ाता हुआ सीढ़ियों से उतर गया। सच्चा सिपाही आदेश का उलङ्घन न कर सका।

राजाराम वहां से तो चला गया, परन्तु उस का क्रोध शांत न हुआ, उस के पश्चात् दस मिनट के अन्दर ही अन्दर नये बाजार में तीन आदमी घायल हुये, जिन में से एक जान से मर गया। इस हत्या के अपराध में जिन तीन नौजवानों पर मुकदमा महीनों तक चलता रहा—अन्त में सब अभियुक्त बरी कर दिये गये।

बेचारा राजाराम हवालात में बीमार हो गया था, बाहर आकर उस की सेहत संभल न सकी—गिरती ही गयी, अन्त में वह बांका जवान असमय में ही,जेल में लगी हुई बीमारी का ग्रास बन गया।

इतने वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी जब कभी मैं राजाराम को याद करता हूं तो मेरे सामने उस की चढ़ी हुई मूछों वाला बहादुर चेहरा जीवित रूप से आ जाता है।

डा० अन्सारी और पुलिस को साथ ही साथ टेलीफोन किया गया था, पर डाक्टर साहब पहले ही आ पहुंचे। डाक्टर साहब अकेले नहीं आये, डा० अब्दुररहमान को साथ लेते आये थे। इस अन्तिम बीमारी में पिता जी का इलाज डा० अन्सारी ही कर रहे थे, और जब कभी उन्हें दिल्ली से बाहिर जाना पड़ता था तब वह अपना स्थानापन्न डा० अब्दुररहमान को बना जाते थे।

जब डाक्टर साहब को बुलावा पहुँचा, तब उन्होंने यही समझा कि शायद निमोनिया ने अपना उग्रतम रूप धारण कर लिया है। जिस से घबरा कर डाक्टर को बुलाया गया है। १९१६ से पिता जी का डा० अन्सारी से परिचय हुआ था। तब से अन्तिम समय तक पिता जी को सिवाय डा० अन्सारी के और किसी चिकित्सक का इलाज अनुकूल नहीं पड़ता था। पिता जी की अवस्था इतनी बढ़ गई थी कि जब निमोनिया के दिनों में डाक्टर जी को चार दिन के लिए भोपाल जाना पड़ा, तो पिता जी ने दूसरे डाक्टर से दवा ही नहीं ली। चार दिन तक इलाज केवल सेक प्लास्टर और परहेज तक ही परिमित रहा। जब डाक्टर साहब भोपाल से वापिस आये तब दवा ली। इस अटल श्रद्धा का श्रेय श्रद्धालु को दें या श्रद्धा के पात्र को, इस प्रश्न का उत्तर यह है कि वह श्रेय दोनों में समान रूप से बंटना चाहिये। पिताजी जिस में श्रद्धा रखते थे, अटल रखते थे, और डा० अन्सारी से जिस ने एक बार इलाज करवा लिया, उसे दूसरा

दरवाजा ससहाता ही नहीं था।

हां, तो जब डाक्टर अन्सारी बलिदान भवन में पहुंचे तो आश्चर्य और दुःख से स्तब्ध रह दरवाजे में घुसते ही सारे दृश्य को देख कर परिस्थिति को समझने की चेष्टा करते रहे—कुछ देर तक जहां के तहां खड़े रह गये - मानों पांव भूमि में गड़ गये हों। फिर आगे बढ़ कर पिता जी की नब्ज देखी—माथे और पेट को छुआ—आंखों के पर्दे पलट कर देखे और जो कुछ आवश्यक समझा देखा भाला, और अन्त में आंसू भरी आंखों से मेरी ओर देख कर कहा—

भाई, अब तो कुछ बाकी नहीं रहा, गोली सीधी छाती में लगी है। मृत्यु फौरन ही हो गई प्रतीत होती है, फिर डाक्टर जी धर्मसिंह की ओर मुड़े, और उसके घाव पर पट्टी बांधने लगे।

इतने में पुलिस आ पहुँची। एक इन्सपैक्टर, दो सब इन्सपैक्टर और बहुत से सिपाही बड़ी टट फट के साथ मैदान में उतरे, मानों जंग के लिये तैयार हो कर आये हों। अनहोनी हो जाने पर शान दिखाना यह हिन्दुस्तानी पुलिस की विशेषता है।

उस समय तक—और वह समय आध घंटे से कम न होगा—धर्मपाल जी खूनी को दबाये पड़े रहे। खूनी के जिस हाथ में भरा हुआ पिस्तौल था, उसे धर्मपाल जी ने एक हाथ से दबा रखा था, दूसरे हाथ से उस के सिर को फर्श में खूंटे की तरह गाड़ रखा था, और उस की पीठ पर अपनी छाती का पूरा जोर देकर लेटे हुए थे। कई लोगों ने बीच-बीच में सहायता के लिये हाथ बढ़ाया। उन सब को धर्मपाल जी ने दूर से हटा दिया। यह बिल्कुल ठीक था कि यदि हत्यारे पर धर्मपाल जी का शिकंजा कुछ भी ढीला पड़ जाता तो वह न जाने कितना अनर्थ कर के भाग निकलता।

सर्व साधारण को धर्मपाल जी के उस धैर्य और बल को देख कर बहुत आश्चर्य हुआ था—पर जो लोग उन्हें बचपन से जानते थे उन्हें कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ, विद्यार्थी अवस्था में ही साथियों पर उन की शारीरिक दृढ़ता का आतंक था उसके बड़े दुर्भाग्य उदित हुये समझो जो फुटबाल के मैदान में हाफबैक धर्मपाल के सामने पड़ जाय। यदि हाफबैक की लात सामने के खिलाड़ी की लात पर जा लगी तो मेजर एक्सीडेंट (भयानक दुर्घटना) का हो जाना अनिवार्य था। या तो हड्डी टूट जाती थी, अथवा टांग पर गेंद जैसा गोला सूज आता था यह बिल्कुल आकस्मिक था, कि अब्दुल रशीद का वास्ता धर्मपाल जी जैसे ठोस आदमी से पड़ा—परन्तु विधाता की इच्छा प्रायः ऐसी घटनाओं से पूरी होती हैं जिन्हें मनुष्य आकस्मिक कहता है। यह विधाता का विधान था कि पिताजी के बलिदान का कानूनी सबूत लाल हाथों के साथ ही गिरफ्तार हो। यह काम धर्मपाल जी जैसे व्यक्ति के हाथों से ही हो सकता था।

सच्चे और पक्के साथी मैंने बहुत देखे हैं, परन्तु धर्मपाल की अपेक्षा अधिक ठोस बात निभाने वाला संगी अब तक मेरे अनुभव में नहीं आया, वह पिताजी के शिष्य भी थे, और निजू मन्त्री भी-परन्तु वह सारा आध्यात्मिक सम्बन्ध था, घर से मंगा कर निर्वाह करते थे और धर्म भाव से पिताजी की सेवा करते थे, उन्हें उस घटना से जो यश प्राप्त हुआ, वह वस्तुतः उसके अधिकारी हैं।

★

लोकनृत्यों में 'विभिन्नता में एकता'

देश के ग्राम और आदिवासी क्षेत्रों से इस बार दिल्ली में गणराज्य दिवस समारोह में भाग लेने, अपने परम्परागत रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्रों से सुसज्जित एक हजार से भी अधिक लोक-नर्तक एकत्रित हुए थे। उन्होंने अनेक प्रकार के नाच और गानों का सुन्दर प्रदर्शन किया। असंख्य दर्शकों में राष्ट्रपति तथा प्रधान मन्त्री भी उपस्थित थे।

देश के सुदूर अंचलों से एकत्र हुए लोक-नर्तक देखते ही बनते थे। पूर्व भारत के आभूषणयुक्त आदिवासी, ढीले लम्बे कुरतों में पंजाबी गोल टोपी पहने हिमालय क्षेत्र के नर्तक और सुन्दर सुसज्जित दक्षिणी क्षेत्रों के नर्तक, एक ही धरती के पूत सब एकत्र थे। जनसाधारण के लिए इन नृत्यों में विशेष आकर्षण था। जनता इन्हें समझ और सराह सकती है। यहां के जनजीवन में नृत्य का बहुत प्राचीन काल से महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

इन विभिन्न प्रकार के नृत्यों से स्पष्ट था कि विभिन्न प्रकार के नृत्यों का स्रोत एक है और उन में साम्य है। वास्तव में नृत्य जनजीवन का अङ्ग रहा है। दैनिक जीवन की घटनाओं, जैसे फसल की बुआई, कटाई, पूजा, प्रेम, युद्ध आदि की उन में अभिव्यक्ति है।

इस वर्ष १८ प्रकार के विभिन्न नृत्य, गणराज्य दिवस समारोह पर देखने में आये।

उत्तर भारत के लोकनृत्य

पंजाब के किसानों का झूमर नाच देखने योग्य था। नृत्य का आरम्भ उस्ताद की 'बोली' से हुआ, इस के बाद नर्तक हर्ष से नाचने लगे। पटियाल का 'लुद्दी' नृत्य भी बहुत मनोरंजक था। हिमाचल प्रदेश के नर्तकों का 'चीनी' नृत्य बहुत सुन्दर था। स्त्रियों और पुरुषों की पोशाक ने नृत्य को और मनोरम बना दिया। उत्तर के पर्वतीय प्रदेश का 'कुलू' नृत्य भी काफी आकर्षक था। लद्दाखी लोगों के नाच पर चीन का प्रभाव स्पष्ट था।

लामा नृत्य

पश्चिम और मध्यभारत के नृत्य

पश्चिम तथा मध्य-भारत के नृत्यों में 'हाली नाच' बहुत श्रेष्ठ था। सूरत जिलों के 'दुबाला' जाति के स्त्री-पुरुषों ने इस में भाग लिया था। अधिकांशतः नर्तक किसान थे और नाच का विषय प्राकृतिक दृश्यों से सम्बन्धित था। इसी प्रकार

महाराष्ट्र का 'दीपक' नृत्य भी बहुत सुन्दर था। राजस्थान के नर्तकों में 'कच्छी घोड़ी' का नाच दिखाया। नर्तकों ने कमर तक घोड़ों का ढाँचा पहन कर, पैदल सिपाहियों से युद्ध किया। सौराष्ट्र के लड़कों ने 'रास लीला' दिखायी। मध्यप्रदेश के बेगा आदिवासियों का करमा नृत्य और विन्ध्यप्रदेश का 'डंडा नाच' काफी आकर्षक था।

दक्षिण भारत के लोकनृत्य

दक्षिण भारत के ग्राम क्षेत्रों के लोकनृत्यों में ढोल और बांसुरी के संयोग से, मनोहरता और बढ़ गई। मैसूर के नर्तकों ने 'दोल्लू कुठिया' नृत्य दिखाया। इसे 'ढोल नृत्य' भी कहा जा सकता है। केरल का विशेष नृत्य 'मोपलाकाली' मलाबार के मुसलमानों ने प्रदर्शित किया। इस की गति देखने योग्य थी। इसी प्रकार तिरुवांकुर-कोचीन का 'वेलाकाली' नृत्य बहुत सुंदर था। हैदराबाद के गोंड नर्तकों ने नकाब पहन कर, तेंदुए की खाल लपेट कर अपना 'वाघेरीनाच दिखाया। भारत के प्राचीनतम निवासी नीलगिरि (मद्रास) के टोड़ा नर्तकों ने भी एक अद्भुत नाच दिखाया, जिस में प्रकृति के प्रकोप से बचने और वर्षा के लिए प्रार्थना की गई थी।

नटराज

पूर्वी भारत के नृत्य

पूर्वी भारत के आदिवासियों के नृत्य अपने निराले सौन्दर्य और विविधता की दृष्टि से उल्लेखनीय थे, जैसे उत्तर पूर्वी सीमा अभिकरण के नर्तकों का 'नागा नृत्य'। मणिपुर के तांगखुल लोगों का 'फीचक' नाच उल्लासपूर्ण था।

★

कुलपति जयराम कजिन्स

(डाक्टर हेनरी जेम्स कजिन्स)

श्री शंकरदेव विद्यालंकार

विदेश में जन्म लेकर भी भारतवर्ष को अपनी भावना-भूमि, संस्कार भूमि और कर्मभूमि बना कर उस के उत्कर्ष के लिए अपने तन, मन प्राण समर्पित करने वाले व साधुचरित मेधावियों में अन्यतम डाक्टर जेम्स हेनरी कजिन्स (कुलपति जयराम कजिन्स) पिछले दिनों मदनपल्ली (मद्रास राज्य) में देवलोक वासी हो गए। अवसान के समय उन की आयु ८३ वर्ष की थी। अपने चरित्र द्वारा भारतवर्ष के साथ उन्होंने ऐसी एकात्मकता स्थापित कर ली थी कि उन्हें हम विदेशी नहीं कह सकते।

प्रारम्भिक जीवन

डाक्टर कजिन्स का जन्म बेलफास्ट नगरी (आयर्लैंड) में २२ जुलाई सन् १८७३ में हुआ था। लंदनबरी के छात्रवासीय विद्यालय में प्रारम्भिक शिक्षण समाप्त कर के वहां के लार्ड मेयर के निजू मंत्री के रूप में आपने अपनी जीवन यात्रा प्रारम्भ की। परन्तु शीघ्र ही बेलफास्ट से डबलिन आकर आपने आयर्लैंड के विश्रुत साहित्य-कला-मर्मज्ञ श्री जार्ज विलियम रसेल और नोबल पुरस्कार विजेता सुकवि डब्ल्यू. बी. यीट्स के सान्निध्य में रह कर अपनी साहित्यिक प्रतिभा को विकसित और परिष्कृत किया। परिणामतया शीघ्र ही आप आयर्लैंड के नवीन साहित्य आन्दोलन में सम्मिलित हो गए। उसी समय आपने दो नाटक लिखे जो वहां के राष्ट्रीय रंगमंच पर अभिनीत हुए। इसी समय आप श्रीमती एनी बीसेन्ट के सम्पर्क में आए। श्रीमती बीसेन्ट की पुस्तक 'एसोटेरिक क्रिश्चियानिटी' (ईसाइयत की रहस्यवादिता) पढ़ कर तथा उन के व्याख्यानों को सुन कर आप अतिशय प्रभावित हुए। इन्हीं दिनों आप ने मार्गरेट नाम की एक प्रतिभाशालिनी संगीत-विशारद और कट्टर शाकभोजी कुमारी से विवाह किया। श्रीमती मार्गरेट कजिन्स आप के भावी जीवन में बड़ी सहायिका सिद्ध हुईं। सन् १९१५ में आप लंदन आ गये। लंदन में ग्रॉंड रिचार्ड ने आप की कविताओं का संग्रह किया। इस काव्य संग्रह की 'पालमाल मेगज़ीन' और 'टाइम्स लिटरेरी सप्लिमेंट' ने भूरि-भूरि सराहना की।

उस युग में भारत में राष्ट्रीय पुनर्जागरण का आन्दोलन बड़े वेग से चल रहा था। आयर्लैंड के अनेक देशभक्तों की भारत के इस आंदोलन से बड़ी सहानुभूति थी। सो श्रीमती एनी बीसेन्ट की प्रेरणा से अपनी पत्नी सहित आप ८ अक्तूबर सन् १९१५ को भारत के लिए रवाना हो गए। बस तभी से आपने अपने को भारतवर्ष की सेवा के लिए सर्वात्मना समर्पित कर दिया।

भारत में आकर अदयार (मद्रास में) स्थिर होने में और भारतीय वातावरण में घुलमिल जाने में कजिन्स दम्पती को देर नहीं लगी। होमरूल आन्दोलन उन दिनों जोरों पर था। श्रीमती बीसेन्ट ने अपने नए प्रारम्भ किए हुए 'न्यू इण्डिया' पत्र के साहित्य-विभाग का आपको उप-संपादक बनाया। अब क्या था? राष्ट्रीय चेतना से परिप्लावित और साहित्यिक सुकृतियों की प्रसविनी आप की कुशल लेखनी ने 'अपना

कर्तव्य प्रारम्भकर दिया। सुकवि और सुसम्पादक के रूप में कजिन्स महोदय ने शीघ्र ही प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। आपकी कविताओं और नाटकों के संकलन कोई सोलह जिल्दों में प्रकट हुए, जिन में गीतसचय वाला खण्ड सन् १६१६ में प्रकट हुआ। आपकी गद्यात्मक साहित्यिक कृतियाँ भी कुछ कम गुणवाली नहीं थीं। वे कृतियाँ भी कोई २० जिल्दों में प्रकाशित हुई हैं।

कला-मर्मज्ञ

भारतीय कला के मर्मज्ञ के रूप में पहले पहल सन् १६१५ में आप को लोगों ने पहचाना। आपने कलकत्ते की 'प्राच्य कला समिति' के कार्यों की समीक्षा करते हुए 'प्राची की कला' शीर्षक एक सुन्दर लेख लिखा। लेख में आपने सूचित किया था -

'यदि भारतीय कलाकार अपनी निजू पद्धति और दृष्टि को छोड़ देंगे तो भारत की कला दरिद्र हो जायगा।'

कुशल कला-मीमांसक के रूप में आपका कर्तव्य श्री गांगुली महोदय की 'दक्षिण भारत की काँस्य मूर्तियां' नामक पुस्तक की विवेचना से प्रारम्भ हुआ था। उस से प्रभावित हो कर आप को प्राच्य-कला-परिषद् कलकत्ता के प्रधान श्री जान बुडरफने परिषद् की वार्षिक कला प्रदर्शिनी के अवलोकन के लिए निमंत्रित करते हुए उस की समीक्षा लिखने को कहा था आप की वह समीक्षा स्टेट्समैन में प्रकट हुई थी। उस समीक्षा से कलकत्ते के कलाप्रेमी मंडल में बड़ी सनसनी फैल गई थी।

कलकत्ता से लौट कर मद्रास में भारतीय चित्रों की प्रथम प्रदर्शिनी का आयोजन करके आपने नवीन भारतीय कला-प्रवृत्ति के प्रति शिष्ट जनसमुदाय में अच्छी दिलचस्पी पैदा की। परिणाम यह हुआ कि बंगलौर, मैसूर आदि उच्च स्थानों पर प्रतिवर्ष नियमित रूप से कला प्रदर्शनियां जुटने लगी और इस प्रकार कजिन्स महोदय के प्रयत्नों से दक्षिण भारत के शिष्ट समुदाय में भारतीय कला के प्रति अच्छी अभिरुचि जागरित हुई, जो अब तक विद्यमान है।

साहित्यक्षेत्र में आप की प्रतिभा और प्रख्याति से प्रभावित हो कर जापान के टोकियो विश्वविद्यालय ने आपको पर्यटक-प्रोफेसर के रूप में निमंत्रित किया। वहां पर आप कोई एक वर्ष तक रहे। आँग्ल साहित्य विषयक आप के व्याख्यानों से प्रभावित हो कर टोकियो विश्वविद्यालय ने आप को 'डाक्टर' की उपाधि से विभूषित किया। कुछ समय पश्चात् न्यू इंडिया पत्र का सम्पादन छोड़ कर आप मदनपल्ली थियोसोफिकल कालेज के आचार्य बनाए गये।

भारतीय नरेशों को कला की ओर प्रवृत्त करने वाले

आपकी ही प्रेरणा और परामर्श से मैसूर के महाराजा ने अपने यहां कलामन्दिर (आर्ट गैलरी) की स्थापना की। अध्यापन कार्य के साथ-साथ समय-समय पर भारत के विभिन्न प्रदेशों में परिभ्रमण कर के कला प्रदर्शनियों का आयोजन करते हुए आप स्वदेशी-कला पर व्याख्यान भी देते रहे। सन् १६२८ में आप भारतीय कलाओं पर व्याख्यान देने के लिए विश्व-यात्रा पर निकल पड़े। इस यात्रा में आपने इटली, फ्रांस, स्विटजरलैण्ड और संयुक्त राज्य अमरीका का परिभ्रमण किया।

सन १६३७ में आपने मन्दिर प्रवेश आंदोलन में बड़े उत्साह से भाग लिया। ट्रावणकोर में एक 'श्वेत ब्राह्मण के' रूप में एक मन्दिर में आप को प्रविष्ट किया गया और आप का भारतीय

नाम 'जयराम' रखा गया। उसी समय आप को 'कुलपति' की पदवी भी प्रदान की गई। तब से आप कुलपति जयराम कजिन्स नाम से प्रसिद्ध हो गए।

सन् १९३१ में ट्रावणकोर के नवीन महाराजा राजगद्दी पर आसीन हुए थे। उस समय एक नए राजमहल का निर्माण भी किया गया था। कजिन्स महोदय ने महाराजा को प्रीतिपूर्वक परामर्श दिया कि भारतीय नरेशों के महलों में भारतीय कला-लक्ष्मी की समुचित प्रतिष्ठा होनी चाहिए। महाराजा को आप का परामर्श बहुत पसन्द आया। एक राजकीय चित्रालय की स्थापना की गई। डाक्टर कजिन्स को ही इस चित्रालय की सज्जा और व्यवस्था का काम सौंपा गया। यह चित्रालय भारत के सुन्दरतम कलाकेन्द्रों में गिना जाता है। कला के क्षेत्र में की गई आपकी सेवाओं के सम्मान में ट्रावणकोर के महाराजा ने आप को 'वीरशृंखला' (सुवर्ण-मालिका) देकर सम्मानित किया।

सन १९३६ में बंगाल के सुविदित कला-मीमांसक श्री अर्धेन्द्र कुमार गांगुली महाशय के घर पर भारतीय कलालक्ष्मी के अनन्य उपासक डाक्टर कजिन्स के सम्मान के लिए एक आयोजन किया गया था। उस में कलकत्ते के प्रायः सभी प्रतिष्ठित कलारसिक महानुभाव समवेत हुए थे। भारतीय कला-जागरण के पिता चित्राचार्य श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर रुग्ण होते हुए भी गुणपूजा के इस अनुष्ठान में प्रधान अतिथि के रूप में उपस्थित हुए थे। श्री ए. पी. बनर्जी द्वारा चित्रित एक मानपत्र शिल्पीगुरु श्री अवनीबाबू द्वारा कुलपति कजिन्स की सेवा में अर्पित किया गया था।

विशिष्ट कृतियाँ

भारतवर्ष के विभिन्न विश्वविद्यालयों में कजिन्स महोदय ने भारतीय कलालक्ष्मी और संस्कृति के विभिन्न अंगों पर बड़े अध्ययनपूर्ण व्याख्यान दिए हैं। पिछले कतिपय वर्षों से आप ट्रावणकोर राज्य के कला विषयक परामर्शदाता थे। भारतीय संस्कृति के विविध पार्श्वों पर प्रकाश डालने वाली आप की कई कृतियां विशेष रूप से सम्मानित हुई हैं। जिन में से कुछ एक का नामोल्लेख करना वाचकों के लिए लाभकर होगा।

१. एशिया की सांस्कृतिक एकता।
२. पुरुषार्थ और पूजा।
३. सौन्दर्य का तत्वज्ञान।
४. समदर्शन।
५. कलाकार की श्रद्धा।
६. जीवन में सौन्दर्य का महत्व।

कजिन्स महोदय का जीवन बहुमुखी प्रतिभा और कृतिशीलता से समन्वित था। वे प्रतिभावान् कवि थे। समर्थ पत्रकार, भावनाशील अध्यापक और उत्साही समाज सुधारक थे। कलामीमांसक और कलात्मक कृतियों के आस्वादक के रूप में देश और विदेश के मनीषियों में उन की बड़ी प्रतिष्ठा थी। उन की भारत-भक्ति का प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। भारतमाता की सेवा के लिए सन १९१५ में वे यहां आए और यहां की संस्कृति में उन्होंने अपने को आत्मसात् कर दिया।

कजिन्स महोदय की धर्मपत्नी श्रीमती मार्गरेट कजिन्स (जिन का कुछ वर्ष पूर्व अवसान हो गया था) भी बड़ी साध्वी और पति-परायणा देवी थी। भारत के महिला समुद्धार आंदोलन में वे प्राणपन से जूझती रहीं। सर्व भारतीय महिला-परिषद् की वे एक कर्मशीला अग्रनायिका थी। भारत-प्रेमी इस मनीषी-युगल ने 'हम दोनों' (वी टुगेदर)-नाम से सन् १९५० में अपनी आत्मकथा लिखी थी। वह हमारे

देश के चरित्रकथा लेखन साहित्य की एक अनूठी वस्तु है। वृद्धावस्था के कारण अपनी भौतिक शक्तियों की क्षीणता के कारण कजिन्स महोदय कुछ वर्षों से वानप्रस्थी की तरह तापस जीवन बिताते हुए अद्यार के ब्रह्मचर्याश्रम में रह कर ध्यान और चिन्तन में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। भारत की जातिय संस्कृति के लिए की गई उन की मूल्यवान सेवाओं के समादर में मद्रास राज्य की सरकार कजिन्स महोदय को कुछ पूजा-दक्षिणा (पेन्शन भी दे रही थी। उन जैसे भारत भक्त सुरुचि एवं शोभा के पुजारी और संस्कृति-सेवक की क्षति-पूर्ति शीघ्र ही नहीं हो सकेगी। हम उन की सेवाओं के प्रति नतमस्तक हैं।

—

मैत्री कैसी हो ?

- शांत पद को प्राप्त करने के बाद अर्थकुशल आदमी को यह करना उचित है—वह कार्यक्षम, सीधा, नेक, सुवचनी, मृदु बने व अधिक अभिमान न रखे।
- संतुष्ट रहे, भरणपोषण थोड़े से हो सके, अपने निजी कार्य बहुत कम हों और आजीविका की जरूरतें कम हों, इन्द्रियां शांत हुई हों, दक्ष रहे ढीठ न हो और परिवार में अति लगाव न हो।
- समझदार जिसे दोष दें ऐसा कोई भी क्षुद्र आचरण स्वयं न करे. (उस की ऐसी भावना हो कि) सब सत्वों को सुख और क्षेम मिले और सब सुखितात्मा बनें।
- प्राणियों में अर्थात् भूतमात्रों में जो कोई हों, स्थावर हों या जंगम, लंबे हों या मोटे, मध्यम हों या छोटे, अणुरूप हों या स्थूल, देखे हुए हों या अनदेखे, दूर हों या पास, पैदा हुए हों या पैदा होने को हों, ऐसे किसी को भी छोड़े बिना सब के सब सुखितात्मा बनें।
- न कोई दूसरे को नीचा दिखावे, न कहीं किसी से अपने को ऊंचा बढ़ावे, न कोई रोष के कारण या बदला लेने के भाव से, दूसरों को दुःख हो, ऐसी इच्छा करे।
- जैसे माता अपने पुत्र की, अपने इकलौते पुत्र की, अपनी आयुष्य देकर भी रक्षा करती है, इसी तरह सर्व भूतों के प्रति अपरिमित प्रेम भावना रखनी चाहिये।
- मैत्री की भावना अखिल लोक के प्रति अपरिमित रखे, चाहे वह ऊपर हो, नीचे हो, बगल में हो, मैत्री तो अबाधित, वैर भेद-भाव रहित होनी चाहिये।
- खड़े या चलते हुए, बैठे या लेटे हुए, जब तक ऊँघाई से घिर न जाय तब तक ऐसी (मैत्री की) स्मृति पर अधिष्ठान रखना चाहिए, इसी को, इस को ही ब्रह्मविहार कहा गया है।
- किसी भी वाद का, आग्रह किये बिना, जो आदमी शीलवान हो कर सत् दर्शन से सम्पन्न है और वासनाओं में लिप्सा को काबू में रखता है उस को निश्चय ही पुनर्जन्म नहीं होगा।

★

पाली में बौद्ध धर्मग्रन्थ

पवित्र बौद्ध ग्रंथ इतनी अधिक भाषाओं में मिलते हैं कि कोई एक व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता कि वह उन सब से परिचित है। ये भाषाएं हैं—पाली, संस्कृत, चीनी, तिब्बती, जापानी, अपभ्रंश और बहुत सी मध्य एशियाई भाषाएं। इन में पाली भाषा के ही बौद्ध ग्रन्थ ऐसे हैं जो अभी तक पूरे के पूरे मिलते हैं और जो अङ्गरेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं में अनुवादों के द्वारा अधिक संख्या में पाठकों तक पहुंच सके हैं। आरम्भ की सब से महत्वपूर्ण प्राकृतियों में पाली भी एक है। भगवान बुद्ध के उपदेशों को लिपिबद्ध करने के लिए स्थविरवादिन बौद्धों ने इसी भाषा को चुना। शायद बुद्ध भगवान् ने मागधी में उपदेश दिये थे, लेकिन भारत में उन का प्रसार होने पर वे स्थानीय बोलियों में रूपांतरित हो गए। आज भी श्रीलंका, बर्मा और दक्षिण पूर्व एशिया के बौद्ध पाली को अपनी धर्म भाषा मानते हैं।

सिंहली परम्परा के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि राजा वत्तगामनि (ईसा पूर्व ८९-७७) के शासन काल में सिंहली भिक्षुओं की महापरिषद द्वारा अन्तिम स्वीकृति मिल जाने पर पाली में लेखन कार्य आरम्भ हुआ। राजगृह, वैशाली और पाटलीपुत्र की तीन परिषदों ने पहले इस भाषा की शब्दावली की रचना की थी और आवश्यक नियम बनाये थे। चार सदियों से भी पहले से पाली बोली जाने वाली भाषा के रूप में उपयोग में आ रही थी। साधारणतः पाली को तिपिटक (संस्कृत में त्रिपिटक) या तीन पिटारियां कहा जाता है। ये हैं—विनय, सुत्त और अभिधम्म।

विनय पिटक

इस पिटक में निम्न ग्रन्थ आते हैं। (१) पतिमोक्ख, (२) सुत्त विभंग, (३) खंधक्स और (४) परिवार कहा जाता है कि विनय पिटक में भगवान् बुद्ध के वे कथन संग्रहीत हैं जिन के द्वारा संघ विषयक विभिन्न नियम निर्धारित किए गए। ये नियम प्रतिमोक्ख में मिलते हैं और सुत्त विभंग में उन ऐतिहासिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है जिन के परिणामस्वरूप इन नियमों की घोषणा की गई। संधक्स के दो विभाग हैं—महावग्ग (विशाल विभाग) और चुल्लवग्ग (छोटा विभाग)। महावग्ग में यह बताया गया है कि संघ में प्रवेश पाने, व्रत रखने आदि के क्या नियम हैं। इस के अतिरिक्त इस ग्रन्थ से प्राचीन भारत के लोगों की जीवन के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। इस में भगवान् बुद्ध के जीवन के विषय में भी काफी जानकारी मिलती है।

सुत्त पिटक

तिपिटकों में सुत्त पिटक सब से बड़ा और सब से महत्वपूर्ण पिटक है। यह निम्नलिखित पांच निकायों में विभक्त है—

(१) दिघ निकाय। (२) मज्झिम निकाय। (३) संयुक्त निकाय। (४) अंगुत्तर निकाय। (५) खुद्दक निकाय। बताया जाता है कि इन में भगवान बुद्ध के प्रवचन संग्रहीत हैं।

अंतिम निकाय में निम्नलिखित विविध कृतियां हैं।

१	धम्मपद	भगवान बुद्ध के ४२३ प्रवचनों का संग्रह जो २६ अध्यायों में हैं।
२	उदन	} भगवान बुद्ध के कथन और तत्कालीन परिस्थितियां
३	इतिवुत्तक	
४	खुद्दक-पथ	(एक संक्षिप्त संग्रह).

५ सुत्त-निपथ (पांच अध्यायों में काव्यात्मक सुत्त)
६ थेरगाथा (भिक्षुओं की कविताएं)
७ थेरीगाथा (भिक्षुणियों की कविताएं)
८ निद्देस (सुत्त-निपट के उत्तरार्ध की टीका। कहा जाता है यह टीका सारिपुत्त ने की।)
९ जातक (भगवान बुद्ध के पूर्व जन्मों की कथाएं)
१० पतिसंभिदा (बौद्ध दर्शन सम्बन्धी प्रश्नोत्तरी)
११ अपादान (बौद्ध साधुओं के वीरतापूर्ण और पुनीत कार्यों के विवरणों का संग्रह)
१२ बुद्धवंस (२४ बुद्धों की गाथाएं)
१३ विमानवत्थु
१४ पेतावत्थु } (क्रमशः देवी और नीलारक्त निवासों का वर्णन)
१५ चरीय-पिटक (पद्य में जातकों का संग्रह)

सुत्त-पिटक को बुद्ध-धर्म की गद्य और पद्य में सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक कृति माना जाता है। पहले चार संग्रहों में भगवान बुद्ध के प्रवचन हैं, जो या तो उन के उपदेश हैं, जिन के शुरू में प्रवचन के स्थान और अवसर के बारे में संक्षिप्त टिप्पणियां हैं; या वे गद्य में सम्भाषण हैं, जिन में कहीं-कहीं पद्य भी आ जाता है। खुद्दक निकाय को विशेषकर यूरोपियनों ने बहुत पसन्द किया है क्योंकि इस में अति सुन्दर संक्षिप्त रचनाएं संगृहीत हैं। धम्मपद और सुत्त-निपट भी इसी श्रेणी के ग्रन्थ हैं। थेरगाथा और थेरीगाथा में भिक्षुओं और भिक्षुणियों की कविताएं हैं और जातकों में भगवान बुद्ध के पूर्व जन्मों की गाथाएं हैं।

अभिधम्म पिटक

तीसरा पिटक अभिधम्म के नाम से प्रसिद्ध है। इस में आध्यात्म का बखान अधिक नहीं है। इस में भी उन्हीं विषयों की चर्चा की गयी है जो सुत्त पिटक में हैं, लेकिन इस में अधिक पांडित्यपूर्ण ढंग से उन का बखान किया गया है। इस पिटक में ये रचनाएं आती हैं :

१. धम्म-संगनी, २. विभंग, ३. कथा वत्थु, ४. पुग्गल-पनत्ती, ५. धातु-कथा, ६. यमक और ७ पत्थान।

ये सभी पुस्तकें बाद की हैं और इन में निकायों की अपेक्षा अधिक विस्तार से विषय का प्रतिपादन किया गया है। कहा जाता है कि जब बुद्ध भगवान देवताओं में प्रचार करने के लिए स्वर्ग गये तो उन्होंने अभिधम्म का पाठ किया था। बौद्ध धर्म के दीर्घकालीन इतिहास में इस पिटक को सदा ही बहुत सम्मान की दृष्टि से देखा जाता रहा है। इस में कथावत्थु भी सम्मिलित है जो, बताया जाता है, तीसरी परिषद् के प्रधान, तिस्स मोगलिपुत्त ने लिखी। यह भी कहा गया है कि इस की रचना सम्राट अशोक के शासन काल में ईसा पूर्व २५० के आसपास हुई।

★

धर्म और दर्शन में विरोध तथा सामञ्जस्य

श्री मनसुखा

धर्म और दर्शन में सामञ्जस्यता हिन्दू धर्म की एक मुख्य विशेषता रही। यूरोप में ईसाई धर्म वालों और दार्शनिकों में सदैव तू-तू मैं-मैं रही; कभी न पटी। और इस्लाम ने तो धर्म-श्रद्धा के लिए दर्शन और तर्क का सदैव विरोध ही किया : स्वतन्त्र विचार को एकदम ही दबा दिया।

लेकिन, क्या धर्म और दर्शन में सचमुच ही कोई मौलिक मतभेद है; क्या उन में कभी मेल हो ही नहीं सकता ? या—धर्म और दर्शन का साथ-साथ न चल पाना : बुद्धि (तर्क) और श्रद्धा (विश्वास) में तारतम्य (सामंजस्य) न होना एक प्रकार की कमजोरी है, एक प्रकार का विशेष दोष है, वह यदि गम्भीर हो तो बहुत ही खतरनाक है। कारण—मनुष्य के व्यक्तित्व और अध्यात्म के सुगठित विकास के लिए उस की तर्क-बुद्धि और धर्म-निष्ठा में सम्बन्ध विच्छेद नहीं होना चाहिए।

धर्म वालों का कहना है कि हमारी बातें (मान्यताएँ आँख मूँद कर मान लो; उन पर तर्क (दलील) मत करो। यदि सोचो तो केवल उन के हक में हो : उन्हें पुष्ट करने के लिए ही। इस कारण स्वतन्त्र विचार करने वालों और विज्ञान वेत्ताओं से भी धर्म का सदा विरोध सा ही रहा। क्योंकि, यदि कोई मान्यता (धारणा) तर्क और परीक्षण की कसौटी पर खरी नहीं उतरती तो स्वतन्त्र बुद्धि को नहीं जँचती, न ही मान्य होती है। फिर भले ही वह कितनी ही पूज्य पुरातन अथवा प्रसारित-प्रचारित क्यों न हो। परन्तु स्वतन्त्र विचारकों को भी एक बात समझ लेनी चाहिए कि सामान्य (दुष्ट=मलिन) बुद्धि धार्मिक सत्यों को कदापि नहीं समझ सकती। इस लिए प्रथम अपरिपक्व अवस्था में विश्वास की आवश्यकता पड़ेगी ही। लेकिन अन्तिम तौर और पूर्ण तपश्चर्या के पश्चात् 'धार्मिक सत्य' भी उस ही प्रकार, 'व्यक्तिगत अनुभूति' द्वारा पुष्टि की गुञ्जाईश रखते हैं जिस प्रकार कि विज्ञान के सिद्धान्त, परीक्षण द्वारा प्रयोगशाला में।

दुर्भाग्य तो यह हुआ कि धर्म एक ओर विज्ञान का विरोध करता रहा या कम से कम उपेक्षा कर वहम चक्कर, अन्ध विश्वास और रूढ़िवाद में फंसा, दूसरी ओर कला विमुख होने से कहीं कहीं (जैसे कि आर्यसमाज और इस्लाम में) शुष्क और भाव-विहिना बनने लगा। इस्लाम में से जब जीवन दायनी आध्यात्मिक स्फूर्ति क्षीण हो गई तो कुछ कोरे फारमूले (चन्द बेसमझे विश्वास लफ़ज़ी सा रह गया। और हिन्दू धर्म तो किसी दूसरी दुनिया, मरने के बाद की इतनी फिकर में लगा कि इस प्रत्यक्ष दुनिया और ऐहिक सुख अर्थात अभ्युदय को ही न सिर्फ भुला बैठा, बल्कि गंवा भी बैठा।

ये हुए तर्क-विहीन, कट्टर अथवा अन्ध-विश्वास या श्रद्धा के अवश्यम्भावी दुष्परिणाम।

परन्तु श्रद्धा-विहीन तर्क भी कोरी विडम्बना मात्र है। यदि जिन्दगी में विश्वास ही नहीं; यदि इस का इतमिनान ही नहीं कि यह जिन्दगी और इस के तजुर्बे अच्छे हैं 'श्रेयकर' तब भला क्यों तर्क किया जाए : जिया ही क्यों जाए ? कहोगे—सिर्फ दुःख उठाने के लिए। क्योंकि, पैदा हुए तो, तो जीना ही होगा। जब तक मौत न छुटाए इस जिन्दगी की कैद से छुटकारा नहीं।

सब तर्क-वादी दर्शन क्या तो चार्वाक की तरह भोग प्रधान (भौतिकवादी) होंगे या घोर निराशावादी। इस के अलावा कोई चारा नहीं।

लेकिन जीवन में आवश्यकता दोनों की ही है—श्रद्धा की भी और तर्क की भी। श्रद्धा की इस लिए कि जीवन की श्रेष्ठता (सत्यं शिवं सुन्दरं) में से विश्वास न उठे; जीवन हल्का, ढीला या फीका न पड़े। साथ ही साथ तर्क की भी जरूरत है, ताकि वह श्रद्धा, अन्धविश्वास या वहम द्वारा विकृत न हो जाए।

यही तो हिन्दू-धर्म की विशेषता थी। काश ! कि हम उसे सुरक्षित रख पाते।

हम ने श्रद्धा-धर्म के लिए बुद्धि या तर्क को नहीं छोड़ा। विचार स्वातन्त्र्य को भी नहीं दबाया। हमारा तर्क भी सिवाय शायद चार्वाक को छोड़ कभी गुमराह न हुआ। उस मेधा (बुद्धि) ने सदैव स्वतः-प्रमाण जीवनदायिनी सुखद 'मुक्ति', 'अर्हन्त अवस्था' अथवा उच्च आनन्दमय आध्यात्मिक जीवन की ओर ही संकेत किया तथा साक्षात् अनुभूति द्वारा 'धार्मिक सत्यों' को सिद्ध कर 'बुद्धिगम्य श्रद्धा' को उत्पन्न, विकसित करने को कहा।

हमारा सच्चा शुद्ध सनातन धर्म यदि अपने मूल रूप में हो तो न विज्ञान के विरोध में है न कला के; नाही तर्क-विहीन है या कोरा निराशावाद अथवा किसी दूसरी दुनिया के बारे में मस्त और इस जिन्दगी से लापरवाह या उदासी ने बल्कि उपनिषद् में तो इहलोक और परलोक दोनों ही साधने की स्पष्ट आज्ञा है। न तो भौतिक उन्नति को छोड़ो और नाही अध्यात्म को। क्योंकि, बिना अभ्युदय के जीवन दूभर और दुःखमय है और बिना निःश्रेयस् के, सारहीन तथा अन्त में छलना—दुःखमात्र। लिहाजा, समन्वय की जरूरत है—भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति में एक ओर तथा श्रद्धा और तर्क में दूसरी ओर। यही कुछ तो हिन्दू-धर्म का सार है—मुख्य विशेषता है।

—

प्रगति की ओर

- असम के उन तेल भण्डारों में जहां से असम आयल कम्पनी तेल निकालती है, १ करोड़ ८० लाख टन तेल जमा होने का अनुमान है।
- मार्च १९५६ में भारत में ३,९९,६५१ टन कच्चा लोहा निकाला गया। इस के पहले महीने में ३,७७,५५१ टन कच्चा लोहा निकाला गया था।
- पेराम्बूर के रेल डिब्बों के कारखाने में पहले साल में यानी अक्टूबर १९५६ के अन्त तक जितने डिब्बे तैयार करने का लक्ष्य रखा गया था अनुमान है उत्पादन उस से दुगना होगा।
- १९५१ में डाकखानों के सेविंग बैंक खाते में १ अरब ८५ करोड़ १० लाख रु० जमा था और १९५५ में बढ़ कर यह राशि २ अरब ५६ करोड़ ५० लाख रु० हो गयी।
- पिछले साल १,२६,३४ ३२६ रु० के मूल्य की मोटर स्पिरिट का निर्यात हुआ। सब से अधिक स्पिरिट, २३,३६,८६८ रु० की आस्ट्रेलिया भेजी गयी।

—

बुद्ध भगवान का धर्मचक्र प्रवर्तन

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

आज से कोई ढाई हजार वर्ष पहले भगवान बुद्ध इस पवित्र भारत-भूमि में अवतरित हुए थे। उन का जन्म एक बड़े राजपरिवार में हुआ था, घर दास दासियों से भरा हुआ था, अन्न-वस्त्र और रत्न का भाण्डार था, परिजनों और पुरजनों का स्नेह भी उन्हें प्राप्त था। परन्तु उन्हें यह सब चीजें जंची नहीं। यह जो सुख और सम्पत्ति का आडम्बर है, वह क्या सचमुच मनुष्य को दुःखों और बन्धनों से मुक्त कर सकता है? कुमार सिद्धार्थ जो बाद में बोधि प्राप्त करने के बाद बुद्ध नाम से प्रथित हुए बहुत ही भावुक और चिन्तन-शील बालक थे। उन्होंने अपने इर्द-गिर्द विचरण करने वाले मनुष्यों और घटनाओं को सावधानी से देखा,और समझने का प्रयत्न किया। उन के मन में बारबार यह प्रश्न उठते रहे कि जरा से मरण से, व्याधि से क्या मनुष्य सचमुच छूट सकता है? ये जो दुनियां के धन्धे हैं, टीमटाम है, धन दौलत है दास दासियां हैं, सम्पत्ति के विशाल ठाठ हैं, वे क्या मनुष्य को जरा से, मरण से और व्याधियों से छुटकारा दिला सकते हैं? स्पष्ट उत्तर मिलता था, नहीं।

सिद्धार्थ ने प्रव्रज्या ली

उन्होंने सब कुछ छोड़ कर प्रव्रज्या ग्रहण की। उन दिनों तपस्या में लोगों का बड़ा विश्वास था। कृच्छ्र तपस्वी लोगों के बड़े-बड़े सम्प्रदाय थे, शीत में, धूप में, कठिन से कठिन कष्ट पाकर, उपवास के द्वारा शरीर को सुखा कर और स्वेच्छा से स्वीकार किए गए अनेक कायक्लेश-जनक या पीड़ादायक साधनाओं को अङ्गीकार कर के परलोक में सुख पाने या मुक्ति पाने की अभिलाषा से लोग बुरी तरह ग्रस्त थे। प्रव्रज्या ग्रहण करने के बाद सिद्धार्थ ने इस कृच्छ्र तप का भी अनुभव प्राप्त किया। गया के पास उस बेला तीर्थ में वह वर्षों घोर तप में लीन रहे। उन्होंने यह अनुभव किया, कि जिस प्रकार अनेक भोगों के भोगने से जरा, मरण और व्याधि से छुटकारा नहीं मिलता, उसी प्रकार यह कृच्छ्र तप वाला मार्ग भी छुटकारे का साधन नहीं है। ये दोनों ही चरम सीमाएं हैं, वास्तविक मुक्ति का मार्ग कहीं इन दोनों के बीच में है। यह सोच कर उन्होंने कृच्छ्र तप का मार्ग छोड़ दिया, जिस के फलस्वरूप उनके प्रति श्रद्धापरायण पांच परिव्राजक साथी, जिन्हें पंचवर्गीय भिक्षु कहा जाता है उन से रुष्ट हो गये। उन लोगों ने आपस में कहा कि छः वर्ष तक दुष्कर तपस्या करने भी यह बुद्ध नहीं हो सका, तो अब गांव-गांव भीख मांग कर और मोटा आहार कर के यह कैसे बुद्ध हो सकगा। यह लोभी है, तपस्या के मार्ग से भ्रष्ट है। ऐसे मनुष्य से किसी बड़े तत्व के पाने का आशा करना उसी प्रकार व्यर्थ है, जैसे स्नान के इच्छुक व्यक्ति का ओस की बूंद की ओर ताकना। इस प्रकार सोच कर वे लोग बुद्ध को छोड़ कर वाराणसी के समीप इसिपतन तीर्थ (सारनाथ) की ओर चले गए।

परन्तु बुद्धदेव ने कृच्छ्र तप की व्यर्थता समझ ली। बौद्ध शास्त्रों में बताया गया है, कि सुजाता की पवित्र खीर को उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण किया, वही उन के बुद्ध होने के बाद वाले, बोधि मंड में वास कर के सात सप्ताह के उनचास दिनों के लिये आहार हुआ। इतने काल तक न स्नान किया, न आहार किया और

न मुंह धोया। जिस बोधि वृक्ष के नीचे वे तप कर रहे थे, उस की ओर पीठ कर के दृढ़ चित्त हो उन्होंने प्रतिज्ञा की कि चाहे मेरा चमड़ा, नसें और हड्डी ही क्यों न बाकी रह जायं चाहे शरीर, मांस और रक्त तक क्यों न सूख जाय, सम्यक् संबोधि या परम-ज्ञान प्राप्त किए बिना मैं इस आसन को नहीं छोड़ूंगा वे पूर्वाभिमुख हो अपराजित आसन में, जिस के बारे में कहा जाता है कि सौ-सौ बिजलियों की कड़क से यह आसन छूटता नहीं, आसीन हुए।

बोधि प्राप्ति

बुद्धदेव को बुद्धत्व प्राप्त हुआ। उन की प्रतिज्ञा सफल हुई। बोधि प्राप्त होने के बाद उन्होंने सोचा कि उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ है उसे सुनने का सब से श्रेष्ठ पात्र कौन है ? सब से पहले उन की दृष्टि महान पंडित आलार-कालाम की ओर गई, पर वे एक सप्ताह पहले ही मर चुके थे। उस के बाद उन की दृष्टि उद्दक रामपुत्र की ओर गई, जिन्हें वे चतुर, मेधावी और अल्पमलिनचेता समझते थे। लेकिन यह भी उसी रात को मर चुके थे। तब भगवान का दृष्टि उन पंचवर्गीय भिक्षुओं की ओर गई, जो उन्हें छोड़ कर बात-श्रद्ध हो कर वाराणसी के इसिपतन तीर्थ की ओर चले गए थे। उन्हीं का स्मरण कर के भगवान ने इसि-पतन की ओर मुंह किया। उन का जन्म और बोधि लाभ दोनों ही बैशाखी पूर्णिमा को हुए थे। इसिपतन में पंचवर्गीय भिक्षुओं के पास पहुंचते-पहुंचते आषाढ़ का दिन आ गया और आषाढ़ी पूर्णिमा को, जो परम्परा से व्यास पूर्णिमा और गुरू पूर्णिमा के नाम से पूजित थी, उन्होंने धर्म-चक्र का प्रवर्तन किया।

प्रथम उपदेश

बौद्ध शास्त्रों में लिखा है कि पंचवर्गी भिक्षुओं को संबोधित कर के कहा, कि भिक्षुओ, दो प्रकार की चरम सीमाएं या अतियां हैं। इन की प्रव्रजितों को नहीं सेवन करना चाहिए। ये दो क्या हैं ? पहली अति तो वह है, जो हीन, पथभ्रांतों लोगों के योग्य अनार्य सेवित अनर्थ युक्त काम वासनाओं में लिप्त होना है। दूसरी अति वह है जो दुःख पर अनार्य सेवित, अनर्थ से युक्त कामी क्लेश में लगता है। एक काम सुख की अति है दूसरी कृच्छ्र तप का। इन दोनों ही अतियों के चक्कर में न पड़ कर तथागत ने बीच का मार्ग मध्यमा—प्रतिपदा—खोज निकाला। कैसा है यह मध्यमार्ग। तीन गुण इस में मुख्य रूप से हैं। यह दृष्टिदाता है, ज्ञान दाता है और शान्तिदाता है। इस से परिपूर्ण ज्ञान और निर्वाण प्राप्त होता है। इसी का नाम आर्य अष्टांगिक मार्ग है। अष्टांगिक अर्थात् आठ अङ्गों वाला मार्ग। आठ अङ्ग से तात्पर्य है ? पहली बात है कि दृष्टि ठीक होनी चाहिए, कर्म भी सम्यक् या समुचित होना चाहिए फिर प्रयत्न, स्मृति और समाधि ठीक होनी चाहिए। इन सब की सम्यक् सिद्धि होने से ही आर्य अष्टांगिक मार्ग सिद्ध होता है।

बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व ही कुमार सिद्धार्थ संसार के प्राणियों के कष्ट में व्याकुल हो उठे थे। उन का हृदय करुणा का अपार पारावार था। जरा, मरण और व्याधि से पीड़ित जन-समूह को देख कर उन का हृदय गल जाता था। जिस समय वे तपस्या में लीन हो परम सत्य को प्राप्त करने के लिए यतमान थे, उस समय भी उन के हृदय गम्भीरतम में करुणा व्याकुल हाहाकार उठ रहा था। पंचवर्गीय भिक्षुओं को संबोधन कर के जब उन्होंने प्रथम धर्म का चक्कर घुमाया, उस दिन सब से प्रमुख बात

उनके चित्त में यही थी। उन्होंने कहा भिक्षुओ, दुःख आर्य सत्य है, जरा या बुढ़ापा भी दुःख है, व्याधि (रोग) भी दुःख है। अप्रियों का संयोग भी दुःख है, प्रियजनों या प्रिय वस्तुओं का वियोग भी दुःख है। इच्छा करने पर किसी इच्छित वस्तु का न मिलना भी दुःख है। संक्षेप में समझो तो रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान ये पांचों उपादान स्कंध दुःख हैं। इस प्रकार पहली बात जो संसार में सत्य है, जिस के कारण प्राणि मात्र पीड़ित व्यथित है, वह दुःख है।

परन्तु यदि दुःख सत्य है तो इसका कुछ कारण भी होना चाहिए। संसार में यदि सर्व-प्रमुख सत्य दुःख ही है तो जीवों को निराश होकर छटपटाते रहने के सिवा कोई चारा नहीं है। परन्तु भगवान बुद्ध ने केवल दुःख की सच्चाई बताकर मौन नहीं ग्रहण किया। उन्होंने बताया कि दुःख अवश्य सत्य है परन्तु दुःख समुदये यह दुःख का कारण भी आर्य सत्य है। दुःख का विरोध भी आर्य सत्य है और दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा अर्थात् दुःख का निरोध करने वाला मार्ग भी आर्य सत्य है। इस प्र ा दुःख जरूर बहुत बड़ी सच्चाई है परन्तु उसके कारण उसका निरोध और दुःख निरोध तक पहुंचाने वाला मार्ग भी उतने ही सत्य हैं। बुद्धदेव ने अपने आचरण और उपदेशों से दुःख के निरोध का मार्ग बताया। उन्होंने दुःख के स्वरूप को, उसके कारणों को उसके निरोध के यथार्थ रूप को और उस निरोध तक पहुंचाने वाले साधन मार्ग को भी समझाया। दीर्घकाल तक वह इस मुक्तिमार्ग का उपदेश घूम-घूम कर देते रहे।

प्रेम और मैत्री धर्म

बुद्धदेव ने जो मार्ग बताया वह अन्तिम विश्लेषण पर प्रेम मैत्री और तितिक्षा का धर्म है। मनुष्य जितनी दूर तक ऊपर उठ सकता है, यह कर्म उसे उतनी ऊंचाई पर ले जाता है। बुद्ध के व्यक्तित्व और उपदिष्ट मार्ग दोनों एक ऐसा अद्भुत आकर्षण था कि जो उनके संपर्क में आया वह उन्हीं का हो रहा, उनके परिनिर्वाण के कुछ ही सौ वर्षों के भीतर यह प्रेम और मैत्री का धर्म तत्कालीन समस्त ज्ञात जगत में फैल गया। जिन बर्बर जातियों के मन में क्रूरता और प्रतिहिंसा के अतिरिक्त और कोई बड़ी बात उठ ही नहीं सकती थी वे भी इस प्रेम और मैत्री के धर्म के सामने मंत्रमुग्ध होकर नतशीश हुई। प्रेम और मैत्री का धर्म संसार में अद्भुत सफलता के साथ उद्घोषित हुआ। ढाई हजार वर्ष बाद आज फिर वैशाख का वही पवित्र मास आया है जिसने बुद्ध भगवान जैसे महाप्राण धर्म प्रवर्तक को जन्म दिया। आज भी संसार को इस प्रेम और मैत्री के धर्म की आवश्यकता बनी हुई है। भारतवर्ष क निवासी यदि गर्व करें कि आज से ढाई हजार वर्ष पहले हमारे देश में ऐसा महामानव पैदा हुआ था जिसमें प्रेम और मैत्री के धर्म को विश्व व्यापक बनाया तो उनका गर्व उचित ही है। धन्य है भारत भूमि, धन्य है यह प्रेम और मैत्री का पाठन मन्त्र। आज से ढाई हजार वर्ष पहले इसने सिद्ध कर है, मनुष्य को विधाता ने प्रेम और मैत्री का संदेश वाहक बनाया है। युद्ध मारकाट और क्रूर, हिंसा उसका स्वाभाविक धर्म नहीं है, वह प्रेम और मैत्री का उपासक है। यह धर्म भी धन्य है।

★

गुरुकुल समाचार

ऋतु-रंग

इस साल ग्रीष्म ऋतु में मौसम तरह-तरह के रंग पलटती रही। उत्सव के पश्चात् एप्रिल महीने का उत्तरार्ध खूब तपता रहा। परन्तु मई के महीने में अद्भुत परिवर्तन आ गया। यदा तदा बदलियाँ छाने लगी। पुरवैया बहने लगी और कई बार धीमी बारिशें होती रहीं। परिणाम यह आया कि कुल का प्राकृतिक वातावरण सुहावना और शीतल हो गया। जून प्रारम्भ होने से पहले ही कई बारिशें पड़ चुकी और चहुँओर हरियाली छा गई है। सामान्यतया कुल में प्रतिवर्ष जुलाई के प्रथम सप्ताह में वर्षा का मंगलाचरण हुआ करता है। परन्तु इस साल मई के उत्तरार्ध से ही मौनसून क्रियाशील हो रहा है। पावस-दूत चातक (काला पपीहा) २४ मई से शिवालक की घाटी में आकर पावस के स्वागत के लिए बराबर चहक रहे हैं। उधर पर्वतों पर तो पर्याप्त वर्षा होने के समाचार आए हैं। गंगा का पानी खूब गदला हो गया है। अतर्कित पावस का आगमन निहार कर किसान भी अचरज में आ गए हैं। ६ जून को मध्य रात्रि में बड़े जोर की आँधी और वर्षा आई परिणामतया बड़े-बड़े पेड़ टूट गए हैं। वाटिकाओं के अनेक फलदार पेड़ भी जड़ से उखड़ कर बरबाद हो गए हैं। कुलवासियों का स्वास्थ्य अच्छा है।

मान्य अतिथि

दिल्ली विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० गणेश सखाराम महाजनी तथा इतिहास के उपाध्याय श्री डॉ० विश्वेश्वरप्रसाद जी परिवार सहित ५ से ७ जून तक कुल में आकर रहे। आप दोनों महानुभाव विशेष रूप से गुरुकुल का अवलोकन करने के लिए ही पधारे थे। आप ने समस्त गुरुकुल-नगरी का परिभ्रमण कर के कुल की कार्यशैली और प्रगति का अवलोकन किया और बड़ा हर्ष और परितोष प्रकट किया। श्रीयुत महाजनी जी ने महाविद्यालय की शिक्षा व्यवस्था के विषय में कई कीमती परामर्श प्रदान किए। डाक्टर विश्वेश्वप्रसाद जी ने भी इतिहास शास्त्र के अध्ययन के विषय में सुन्दर सुझाव दिए। गुरुकुल के शांत-पावन और आकर्षक वातावरण का अनुभव कर के आपने तो यहां तक कहा—मैं तो यहाँ रम जाना चाहता हूं। दोनों ही मान्य मेहमानों के प्रीतिपूर्ण सान्निध्य से कुल के कार्यवाहक भी विशेष आह्लाद, आमोद और परितोष अनुभव करते रहे।

काशी के प्रतिष्ठित रईस और ललितकला-विज्ञ डाक्टर राय गोविन्दचन्द्र जी सपरिवार कुल में पधारे। आपने संग्रहालय में काँगड़ा-शैली के चित्रों का तथा अन्य पुरातत्व की वस्तुओं का बारीकी से अवलोकन कर बड़ी प्रसन्नता अनुभव की। वनस्पति-वाटिका को भी आपने बड़ी दिलचस्पी के साथ देखा।

विशेष व्याख्यान

२६ मई को माननीय श्री चन्द्रभानु जी गुप्त (आरोग्य-मन्त्री, उत्तर प्रदेश कुल में पधारे। वेद मंदिर में आप के सन्मान में कुलवासियों की एक सभा समवेत हुई। आपने सभा में कृषि विद्यालय और ग्राम सेवक विद्यालय के छात्रों को विशेष रूप से सम्बोधित करते हुए एक उद्बोधनात्मक भाषण दिया। आपने बताया कि आप यहां पर देहातों की सेवा करने के लिए तालीम प्राप्त कर रहे हैं। सो उस के लिए आपको ग्रामों की आर्थिक, सामाजिक और चारित्रिक समस्याओं का ठीक-ठीक अध्ययन करना चाहिए। उन के जीवन-स्तर को ऊंचा

उठाने के लिए आपको बहुत प्रयास करना पड़ेगा। उस के लिए बड़े धैर्य और नैष्ठिकपने से काम करना होगा। पंचवर्षीय योजना के विषय में भी आपने बहुत सी उपयोगी बातें समझाई।

अतिथि गण

बाहर भी सर्वत्र ग्रीष्मावकाश होने से इन दिनों गुरुकुल में आने वाले दर्शकों की संख्या विशेष रहती है। बद्री केदार की तीर्थ यात्रा करने वाले भी अनेक प्रेक्षक गुरुकुल में आते हैं। पिछले दिनों पधारने वाले कुछ एक मान्य अतिथि इस प्रकार हैं—

प्राध्यापक भारतभूषण सरोज, दिल्ली विश्वविद्यालय। श्री रामदयाल जोशी, वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के संचालक। श्री विद्याशंकर शर्मा आगरा, गुलदस्ता के पूर्व सम्पादक। प्रो० विश्वनाथप्रसाद जी राजनीति विज्ञान के प्राध्यापक, पटना विश्वविद्यालय। ट्रेनिंग कालेज अमृतसर के आचार्य श्री हरनामसिंह जी तथा छात्रगण।

नवीन छात्रावास

आयुर्वेद महाविद्यालय से लगी हुई अमराई के सामने नवीन छात्रावास की नींव भराई के शुभप्रसंग पर कुलवासियों ने मिलकर बृहद्यज्ञ किया। यज्ञ के अनन्तर कुलपति श्रीयुत इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने कहा—इस नए छात्रावास का प्रारम्भ हम श्रमदान से करते हैं। गुरुजनों और छात्रों के श्रमदान के पीछे यही भावना है कि हम श्रद्धापूर्वक इस कार्य में अपना योग दे रहे हैं।

इस के बाद सबसे पहले कुलपति जी ने कंकरीट और मसाले की टोकरी नींव भराई के लिए खाई में डाली और बाद को अन्य गुरुजनों ने भी बारी-बारी से अपने हाथों से टोकरियां उठाकर खाई को भरना प्रारम्भ किया। इस शुभ अवसर पर कुलवासियों में मिष्टान्न भी बांटा गया।

शोक वृत्त

बड़े दुःख की बात है कि गत २७ मई रविवार को गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय के उपाध्याय श्री वैद्य निरंजनदेव जी आयुर्वेदालंकार के उगती जवानी के २३ वर्ष के ज्येष्ठ पुत्र संतोषकुमार का नहर में तैरते हुए अकस्मात् ही डूब कर अवसान हो गया। इस दुर्घटना से कुल में एकदम शोक और उदासी छा गई। समस्त कुलवासी श्री वैद्य जी के प्रति हार्दिक समवेदना और सहानुभूति प्रकट हुए वियुक्त आत्मा की शांति और सुगति के लिए प्रार्थना करते हैं। ★